श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में वस्तु और शिल्प

शोध प्रबन्ध

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी

1998

कला संकाय के अन्तर्गत हिन्दी विषय में
पी-एच० डी० की उपाधि हेतु प्रस्तुत
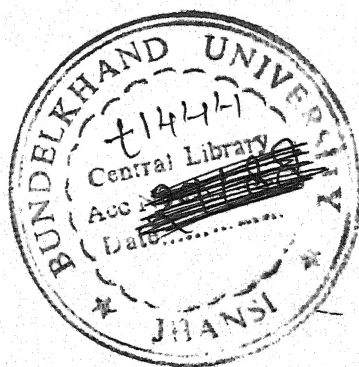
शोध निर्देशन :
डॉ० जवाहर लाल कंचन
रीडर, हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

शोधार्थी :
मधु टण्डन

डा० जवाहरलाल कंचन
पी-एच० डी०
२६४, चमनगंज, सीपरी बाजार, झाँसी पिन २८४००३ फोन ४४२४६३, ४४४७३६

झाँसी दिनांक १८ मई १९९८

प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित करते हुए मुझे अपार हर्ष है कि सुश्री मधु सक्सेना ने मेरे निर्देशन में "भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में वस्तु और शिल्प" विषय पर बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि हेतु यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया है। इन्होंने वाजपेयी जी के उपन्यासों का अन्य समकालीन उपन्यासकारों के सन्दर्भ में गहराई से अध्ययन किया है और कथ्य की सम्यक समालोचना वस्तु और शिल्प के विभिन्न आयामों में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। यह शोध प्रबन्ध इनकी मौलिक कृति है।

मैं इनके द्वारा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से सन्तुष्ट हूँ।

जवाहरलाल कंचन
18/5
(डा. जवाहर लाल कंचन)

अनुक्रम .

****

प्राक्कथन

भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'गुप्तधन' मैंने इण्टर कक्षाओं में पढ़ा था, बी० ए० में राजपथ पढ़ा फिर राजपथ पर डा० जे० एल० कंचन के निर्देशन में लिखा गया एक लघु शोध प्रबन्ध भी पढ़ा। सहज जिज्ञासा हुई कि उनके उपन्यासों को पढ़ा जाय।

कुछ वर्ष पूर्व डी० एच० लारेंस का 'चैटर्ली का प्रेमी' (Lady Chatterleys's Lover) *हिन्दी में पढ़ा। प्रेम और वासना के द्वन्द्व की समस्या इस उपन्यास में भी उठाई गयी थी। तभी मैंने भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों पर शोध करने का मन बनाया था।*

वाजपेयी जी के नाम से मिलता- जुलता एक और नाम था – 'चित्रलेखा' के ख्याति नाम लेखक भगवती चरण वर्मा का । पंजीकरण करा लेने के बाद डॉ. जे. एल. कंचन की एक वार्ता आकाशवाणी छतरपुर से प्रसारित हुई थी फिर तो वर्मा जी के उपन्यास पढ़ डाले।

मन की इच्छा संकल्प में बदल गई। शोध निर्देशन के लिए डॉ. कंचन, रीडर, हिन्दी विभाग, बुन्देलखण्ड कॉलेज झांसी ने सहज ही मेरे अनुरोध को स्वीकार कर मुझे प्रोत्साहित भी किया । और यह कृति पी० - एच० डी० की उपाधि के लिये प्रस्तुत करने लायक हुई।

मुझे प्रोत्साहित करने में मेरे पति श्री हरीकृष्ण बट्टा जी ने अपरिमित सहयोग प्रदान क़िया। उनकी नित्य प्रति की चिन्तना मेरे शोध - द्वारों को खोलती गई। डा. सियाराम शरण शर्मा, ने मुझे आवश्यक ग्रन्थ उपलब्ध कराये। डॉ. कंचन ने अंग्रेजी ग्रंथों को हिन्दी में समझाया, डॉ. कमलेश ने अनुपम सुझाव दिए, इन सबके आर्शीवाद से मैं इस शोध- प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी। जो आशीर्वाद देते हैं वे धन्यवाद की औपचारिकता की कांक्षा नहीं करते- उनका वरद हस्त ही सदा मेरी कामना बनी रहे।

झांसी **मधु टण्डन**

31 मई 1998

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प

भूमिका :

(भगवती प्रसाद वाजपेयी का जीवन वृत्त, साहित्यिक उन्मेष,
विविध विधाओं के सृजक, कथा - शिल्पी कलाकार,
वैचारिक चिन्तन और दर्शन प्रेमचन्द परम्परा के अभिभाषक)

"जीवन का जो सन्दर्भ जितना कारूणिक और दुःख दर्द से युक्त होता है उसकी कथा उतनी ही मनोहारिणी होती है। इस प्रकार का जीवन भोगना कठिन होता है। यह कहना कठिन है कि उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी के जीवन की कहानी में कितने पन्ने हैं और प्रत्येक पन्ने पर क्या लिखा है? जीवन - पोथी के अक्षर वांचना आसान काम नहीं हैं।" (डा. ललित शुक्ल)

उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी का जीवन वृत्त

उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी का जन्म अंग्रेजी तिथि के अनुसार ११ अक्टूबर १८९९ ई. में मंगलपुर गाँव में हुआ था।

मंगलपुर गांव कानपुर और इटावा रेलमार्ग पर झींझक रेल्वे स्टेशन से सात किलोमीटर की दूरी पर सड़क मार्ग से सिकन्दराबाद से रसूलाबाद जाते समय डेरापुर तहसील के अन्तर्गत सड़क के पास ही बसा है।

मूल रूप से भगवती प्रसाद वाजपेयी के पूर्वज निकट वर्ती बन्नापुर गाँव के निवासी थे। उनके पिता श्री शिवरत्न वाजपेयी का विवाह मंगलपुर में हुआ था जहां जाकर वे बस गए थे और इसी मंगलपुर में भगवती प्रसाद वाजपेयी का जन्म ननिहाल में हुआ था। अपने मूल गाँव बन्नापुर के विषय में वाजपेयी जी का स्पष्ट कथन था - " जिस गांव ने मेरे पिता का सम्मान नहीं किया वहाँ आकर मैं क्या करुँगा !" और वे जीवन पर्यन्त बन्नापुर नहीं गए।

परिवार की आर्थिक विपन्नता के कारण वाजपेयी जी उच्च शिक्षा से वंचित रहे। वे आठवीं कक्षा तक ही पढ़े। कक्षा चार में उत्तीर्ण होने के उपरान्त उन्हें विशेष परीक्षा गणित और हिन्दी भाषा में, सर्वाधिक अंक प्राप्त हुए। स्वाभाविक था कि भाषा के प्रति उनकी अभिरूचि विकसित होती। संस्कृत और व्याकरण की शिक्षा उन्होंने पं. बाँके बिहारी चतुर्वेदी से ग्रहण की थी और उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने काव्य सिद्धान्तों और छन्दस का अध्ययन किया था। 'काव्य निर्णय', 'काव्य - प्रभाकर' और 'छन्द प्रभाकर' उनके काव्य - ज्ञान के मूल ग्रन्थ थे। बंगला लेखकों में कविकुल गुरू रवीन्द्रनाथ टेगोर और कथाकार शरतचन्द्र का उन पर पर्याप्त प्रभाव है। हिन्दी कहानीकारों में वे मुंशी प्रेमचन्द से

सर्वाधिक प्रभावित थे। शरत और प्रेमचन्द्र का प्रभाव वाजपेयी जी ने श्रृद्धा - पूर्वक स्वीकार किया है।[१]

काम था साहित्यकारों की पुस्तकों के विक्रय का इस कार्य को उन्होंने बड़े मनोयोग से किया। एक भी ऐसी पुस्तक उन्होंने नहीं बेची जिसे स्वयं उन्होंने आद्यान्त न पढ़ लिया हो। उनके किसी ग्राहक ने प्रेमचन्द के सेवा - सदन की बुराई यह कह कर की कि "सुमन कोठे पर बैठकर वेश्या हुए बिना रह नही सकती"। वाजपेयी जी सेवा सदन को दोबार पढ़ चुके थे।उन्होंने तपाक से उत्तर दिया- 'तो फिर सुआ पढ़कर कोई गणिका तर नही सकती और मीरा को भी वास्तविक गिरधर नागर मिल नहीं सकते।' इसके उपरान्त उन्होंने पुस्तक - विक्रय का कार्य त्याग कर अध्ययन और चिन्तन में ही लगे रहे। यह उनकी साहित्य साधना का पहला सोपान था!

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वाजपेयी जी को डायरी लिखने की सलाह दी। हरिऔध जी के सम्पर्क में आकर उन्होंने देवत्व में मनुष्य की वरीयता देखी। आचार्य चतुरसेन से प्रेम की नैतिकता और किशोरी लाल गोस्वामी से प्रेम प्रंसगों की दुरूहता में पलती हुई आदर्श प्रेम की जीवन्तता का उन्होंने यथार्थ भी भोगा।उपर्युक्त सभी चिन्तन और विचारों का उनके उपन्यासों पर भी प्रभाव लक्षित होता है। बंगला का एक उपन्यास 'बरोबरी' के एक नही बारह लेखक थे। तो 'मीठी चुटकी' उपन्यास का प्रथम अंश वाजपेयी जी ने मध्य अंश श्री विजय वर्मा ने और अन्तिम भाग श्री सक्सेना ने पूरा कर हिन्दी उपन्यास जगत में एक नवीन हलचल उत्पन्न कर दी।

वाजपेयी जी यथार्थ को स्वप्न में जी लिया करते थे ऐसा स्वप्न जो यथार्थ से बढ़कर होता था। वे शरत्चन्द्र का गृह दाह पढ़ते ऐसी परामनोस्थिति में पहुंच गए मानो वे स्वयं उस गृह दाह में फँसे हों - एक ओर (शरत की नारी पात्र) अचला को बचाना और स्वयं भी बचना है तथा दूसरी ओर घर का अग्निदाह। वे स्वयं देख रहे थे, रो रहे थे और कुछ बोल भी नही पा रहे थे। स्वप्न का यथार्थ था वह या यथार्थ का स्वप्न। उनके लेखक ह्रदय की संवेदना रचनाकार के निर्माण का एक और सफल सोपान बनी थी।

१. डॉ. ललित शुक्ल - भ. प्र. वा अभिनन्दन ग्रंथ पृ. १४९

शिक्षा -

वाजपेयी जी ने मिडिल तक की शिक्षा अकबरपुर में ग्रहण की। शिक्षा प्राप्त करने में भी अनेक कठिनाइयां थी। शिक्षा के दौरान उन्हें दो रुपया वजीफा भी मिलता था। दो रुपया मासिक वजीफा जीविका के लिए भी पर्याप्त नही था तथापि वे लगनशील और अध्यवसायी थे। २४ वर्ष की अवस्था में उन्होंने अंग्रेजी और बंगला भाषा सीखी। शरत्चन्द्र और प्रेमचन्द्र के कथानकों के वातावरण और सामाजिक विसंगतियों ने उनके कथाकार को जागृत कर उन्हें मानव - मनोभावों का व्याख्याकार बना दिया। उनकी कहानियों और उपन्यासों में मनोभावों का दिग्दर्शन ही एक प्रमुख अभिव्यक्ति है। मिडिल के बाद उन्होंने स्कूली - शिक्षा ग्रहण नहीं की।

पम्परागत ब्राह्मण परिवार के संस्कारों के अनुरूप ११ वर्ष की अवस्था में 'जब वे कक्षा ४ के विद्यार्थी थे, उनका विवाह हो गया था। १४ वर्ष की अवस्था में उर्दू के साथ (द्वितीय भाषा के रूप में) उन्होंने मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की थी और १८ वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने गाँव के विद्यालय में अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया था। अध्यापक के ही कार्य - काल में वाजपेयी जी का सम्पर्क इन्दु, सरस्वती, मर्यादा तथा प्रताप जैसे साहित्यिक पत्रों से हुआ। इसी दौरान उन्होंने 'बंगवासी' पंत्र से भी सम्पर्क का सौभाग्य मिला। यद्यपि वाजपेयी जी केवल काम - चलाऊ बंगला भाषा जानते थे तथापि उन्हें यह भाषा रूचिकर लगती थी। रवीन्द्र नाथ टैगोर के साहित्य का अध्ययन उन्होंने बंगला में ही किया।

वाजपेयी जी अपने गुरूओं और मित्रों के प्रति आदरभाव रखते थे। पं. बाँके बिहारी चतुर्वेदी, पं. शिवनाथ अग्निहोत्री, डा. गोवर्धन सिंह, श्री चन्द्रिका प्रसाद अग्निहोत्री (मंगलपुर के स्कूल के हेडमास्टर) अध्यापक सदाशिव अग्निहोत्री, कांग्रेसी रामाधार त्यागी उनके आदरणीय थे। गाँव के श्री रामकृपा चौबे 'रामकृपा' के नाम से ही विख्यात हुए। सहदेव हलवाई और ददिया वाजपेयी भी स्मरणीय है।श्री राम अवस्थी मंदिर के ठाकुर द्वार से उठाकर मनौती पूरी न होने पर बाहर फैक देते थे और फिर पश्चाताप से उसे उठाकर गंगाजल व दूध में स्नान कराने के बाद पुन : स्थापित कर देते।सभी ग्रामवासी उनके उपन्यासों में कहीं न कहीं विखरे हैं विशेष रूप से भूदान शीर्षक उपन्यास में । पं. बाकेबिहारी चतुर्वेदी का नाम मिश्रबन्धु विनोद में भी उल्लिखित है।१९१६ से १९१८ तक वाजपेयी मंगलपुर में अध्यापक रहे। किन्तु भाग्य में कुछ और ही था। अध्यापक पद से त्यागपत्र देकर वे कानपुर चले गए।

लेखन और सम्पादन -

१९१८ में वाजपेयी जी ने प्राइमरी स्कूल से त्याग पत्र देकर कानपुर में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी से सम्पर्क किया और तुरन्त ही उन्हें प्रकाश पुस्तकालय में पन्द्रह रूपया मासिक पर कार्य मिल गया। प्रातः और सांय काल में कुल छह घण्टे काम करते रहने पर वाजपेयी जी को सन्तोष नहीं हुआ। वाजपेयी जी ने साझे में एक दूकान खोल ली। मेस्टन रोड स्थित लायब्रेरी को छोड़ चौक बाजार में वाजपेयी जी स्वदेशी वस्तुओं की साझे की दुकान चलाने लगे। कठिनाइयों के साथ दुर्दैव भी चला। दुकान में चोरी हो गई और एक बार फिर वाजपेयी जी नौकरी करने के लिए विवश हो गए। १९२० में बंगाल बैंक में उन्होंने काम किया किन्तु नौकरी उन्हें रास न आनी थी, न आई। शीघ्र ही उन्होंने बंगाल बैंक की नौकरी छोड़ दी।

कानपुर एक साहित्यिक नगर था। पत्र पत्रिकाएं प्रकाशित होती थी।श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा यद्यपि एक व्यवसायी थे तथापि उनकी साहित्य - सुरूचि विख्यात थी। श्री उदय नारायण वाजपेयी के सौजन्य से भगवती प्रसाद वाजपेयी को 'संसार' मासिक पत्रिका में प्रूफ रीडिंग का काम मिल गया। उसमें वे सम्पादकीय टिप्पणी भी लिख दिया करते थे। इस पत्र में राजाराम शुक्ल को "एक भारतीय आत्मा" का उपनाम वाजपेयी जी ने ही दिया था। नारायण प्रसाद अरोड़ा ने वाजपेयी जी की लगनशीलता के कारण सम्पादक के रूप में उनका ही नाम छपने दिया। उनका कथन था 'जो काम करेगा नाम उसी का सम्पादक के रूप में छपेगा।'

'संसार' पत्रिका के माध्यम से लखनऊ के दुलारेलाल भार्गव और रूप नारायण पाण्डेय से उनका सम्पर्क हुआ। उस समय आप 'माधुरी' पत्रिका का सम्पादन करते थे। विशम्भरनाथ शर्मा की रचनाएं, कहानियां आदि 'माधुरी' में छपती थी। उन्होंने वाजपेयी जी को 'माधुरी' का सह- सम्पादक बना दिया। वहाँ उन्होंने एक वर्ष कार्य किया और १९२५ में वे कानपुर भी छोड़कर साहित्य तीर्थ इलाहाबाद जा पहुँचे।

इलाहाबाद साहित्यकारों का नगर था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन साहित्यकारों की संस्था थी। हिन्दी प्रेमी उस संस्था के प्राण थे। इसी हिन्दी साहित्य सम्मेलन संस्था में वाजपेयी जी ने साठ रूपये मासिक वृत्ति पर सह- मंत्री का कार्य सम्भाला और १९२५ से १९४४ तक वे उसी पद पर कार्य करते रहे। इसी समय से वे साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वाजपेयी जी की प्रथम कृतियों का विवरण निम्नवत् है-

१९१५	प्रथम कविता	'रसिक मित्र' सं. मनोहर लाल मिश्र
१९१७	दूसरी कविता,	'लक्ष्मी' गया, सं. लाला भगवान दीन
१९१९	प्रथम लेख 'परिवर्तन' -	'संसार' कानपुर, सं. उदयनारायण वाजपेयी
१९२२	प्रथम कहानी 'यमुना'	'श्री शारदा', जबलपुर, सं. द्वारिका प्रसाद मिश्र
१९२६	प्रथम उपन्यास	प्रेमपथ

कहानीकार के रूप में आचार्य विनय मोहन शर्मा ने वाजपेयी जी को अत्यधिक महत्व प्रदान किया। मुंशी प्रेमचन्द ने एक कथा संग्रह प्रकाशित किया जिसमें वाजपेयी जी की कहानी नहीं थी। उन्होंने 'कर्मवीर' पत्र के माध्यम से साहित्य प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया कि वाजपेयी जी की कहानी के बिना प्रेमचन्द जी का कहानी - संकलन अधूरा है।इसी प्रकार प्रयाग में आयोजित द्विवेदी मेले में भी उन्होंने १९३४ में अपूर्व लगन से काम किया। इस साहित्य मेले का साहित्य विभाग वाजपेयी जी के ही निर्देशन में चलता था। १९४१ में वाजपेयी जी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर साहित्य - परिषद के सभापति बने और इस पद पर उनका कार्य प्रशंसनीय भी रहा।

उनका पहला उपन्यास प्रेमपथ १९२६ में लहरिया सराय, दरभंगा, बिहार से प्रकाशित हुआ था। उसकी भूमिका के लेखक थे मुंशी प्रेमचन्द जिन्होंने भगवती प्रसाद वाजपेयी और उनकी कृति के विषय में लिखा था -

> "भगवती प्रसाद वाजपेयी ने हिन्दी साहित्य को
> बहुत अच्छी भेंट दी है। इसमें (प्रेमपथ में)
> वासना और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप
> चकित रह जाएंगे। स्त्री पुरूष में प्रेम हो जाना
> स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अन्त
> विवाह न होकर केवल वासना हो, वह कलुषित हैं।
> उसकी निन्दा होती है और होनी भी चाहिए अन्यथा
> विवाह की मर्यादा भंग हो जाएगी।"

वाजपेयी जी ने १९६७ तक ४५ उपन्यास ३ नाटक १७ कहानी संग्रह १ काव्यकृति, ६ कृति सम्पादन , ४ पत्रों में उप सम्पादक , २ पत्रों के सम्पादक और ७ वाल साहित्य की रचनाएँ साहित्य जगत को सौंपी । वे सर्वतोमुखी साहित्य प्रतिभा सम्पन्न थे ।

फिल्म क्षेत्र में वाजपेयी जी -

सुप्रसिद्ध साहित्यकार अमृतलाल नागर की सलाह पर वाजपेयी जी १९४५ में बम्बई पहुँचे । उस समय बम्बई में साहित्यकारों का संगम था । उस समय वहां बाबू भगवती चरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क और स्वयं नागर जी भी थे । नागर जी ने ही उन्हें पटकथा और गीत लेखन के लिए प्रोत्साहित कर काम दिलवाया । भगवती प्रसाद वाजपेयी ने विष्णु सिनेटोन के साथ अनुबन्ध कर 'हुआ सवेरा' के लिए आठ गीत और पट- कथा लिखी थी ।इसे जीवन कला चित्र कम्पनी ने प्रदर्शित किया । वाजपेयी जी की इस फिल्म से शायद १८ दृश्य काट दिए गए थे । इस फिल्म के प्रोड्यूसर थे हीरा भाई पटेल, निर्देशक थे कुलभूषण जी, हीरो– सप्रू, खलनायक – प्रेमकान्त, हीरोइन – नयनतारा, गायक – मुकेश और गायिका थी गीताराय ।

वाजपेयी जी की दूसरी फिल्म थी 'भक्त प्रह्लाद'[१] इसके प्रोड्यूसर थे नटवर श्याम, निर्देशक थे – धीरू भाई देसाई, प्रह्लाद की मां की भूमिका में थी लीला चिटनिस और गीत शमशाद बेगम ने गाए थे ।

तीसरी फिल्म में 'देवकन्या' के संवादों और गीतों को वाजपेयी जी ने सिनेमा के उपयुक्त सजाया संवारा था , पर उनका मन इसे स्वीकार करने के लिए तत्पर न था । फिल्म जगत उन्हें रास नहीं आया । भारत विभाजन के समय भगवती बाबू, अश्क जी और नागर जी बम्बई छोड़ आए । वाजपेयी जी का भी मन बम्बई में फिर नहीं लगा । उनका अनुभव था – 'ऐसे जीवन का क्या, जिसमें कोई सगा नही होगा, क्योंकि वहां का माई - बाप होता है पैसा । वहां बेइमानी का नाम है चातुर्य, विश्वासघात का नाम है आगे बढ़ना - उन्नति करना । " और वे १९४९ में खाली हाथ बम्बई से लौट आए । सभी अच्छे कहानीकार, प्रेमचन्द को मिलाकर, सिनेमाजगत बम्बई गए और खाली हाथ ही लौटे ।

वर्ष १९४९ के आस पास बम्बई से लौटने के बाद हैदराबाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ । प्रो. विजयेन्द्र स्नातक तब वही थे और उनके ही सौजन्य से १९५० में 'गुप्तधन' उपन्यास का प्रकाशन गौतम बुक डिपो से हुआ । तब से अर्थात १९५० से वाजपेयी जी स्थायी रूप से कानपुर में आकर बस गए ।

१. क्षेमचन्द्र सुमन - वाजपेयी जी : जीवन के विविध सन्दर्भ.

भगवती प्रसाद वाजपेयी की भैंट उस समय के प्रसिद्ध कवि व कहानीकारों से हो चुकी थी। बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर', श्रीधर पाठक, महाकवि 'निराला', जयशंकर 'प्रसाद', मुंशी प्रेमचन्द्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हरिऔध, महावीर द्विवेदी, जैनेन्द्र, चतुरसेन, प्रभृति साहित्यकारों के सानिध्य का भी वाजपेयी जी ने लाभ उठाया है। अमृतलाल नागर तो उनके परम हितैषी थे ही, प्रेमचन्द जी ने उन्हें प्रोत्साहित किया। जिन परिस्थितियों ने प्रेमचन्द को समाज की दुरूहताओं का लेखक बना दिया था और वे उपन्यास तथा कथा जगत के आदर्श मानदण्ड बने थे, उससे भी कठिन परिस्थितियों ने वाजपेयी जी को मानव मन की अनेक स्थितियों का, मनोवृत्तियों का चितेरा बना दिया था।

भगवती प्रसाद वाजपेयी महात्मा गांधी जी के सिद्धान्तों से बहुत प्रभावित थे। उनके सभी उपन्यासों में कहीं न कहीं अहिंसा, सत्य और प्रेम अभिव्यक्त है। प्रेम और कर्त्तव्य के वे अनूठे कथाकार थे। आर्थिक संघर्षो से जूझता व्यक्तित्व सादगी भरा जीवन ही जी सकता है। नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थावान और ईश्वर पर विश्वास उनका अपना चरित्र है।

साहित्यिक उन्मेष -

प्रत्येक साहित्यकार प्रारम्भ में कवि ही होता हैं। वाजपेयी जी का साहित्यकार भी कवि कर्म से ही अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। यदि वाजपेयी जी कवि ही बने रहते तो महाकवियों की कोटि में उनका भी नाम होता किन्तु भगवती चरण वर्मा ने, जो स्वयं उस युग के एक श्रेष्ठ कहानीकार थे, उनको कहानी लिखने के लिऐ प्रेरित किया और फिर उनके लेखन की दिशा कहानी, उपन्यास और नाटक लिखने की ओर प्रवृत्त हो गई। पत्र- पत्रिकाओं के सम्पादन के साथ - साथ वे बाल साहित्य के भी श्रेष्ठ रचनाकार हुए किन्तु उन्हें ख्याति अपने उपन्यास लेखन से ही मिली। वाजपेयी जी ने विपुल साहित्य की रचना की है और सब का सब साहित्य उन्होंने अपने प्रकाशकों को बेच दिया। किसी भी रचना की प्रभूति राशि (रायल्टी) उन्हें नहीं मिली जिसका मूल कारण उनकी अपनी आर्थिक कठिनाइयां रही है। यहीं कारण है कि उनकी रचनाएं अब खोजने पर ही मिलती है। हाल ही में कुछ उपन्यासों का प्रकाशन नए रूप में हुआ है और अब उनके साहित्य की खोज प्रकाशन हेतु जारी है।

वाजपेयी जी का साहित्य सृजन कविता से प्रारम्भ हुआ और १९१५ में उनकी पहली कविता मेरठ के 'रसिक मित्र' में प्रकाशित हुई। दूसरी कविता लाला भगवान दीन ने 'लक्ष्मी' में प्रकाशित की। कानपुर के प्रारम्भिक दिनों में "व्यक्ति विशेष" उपनाम से प्रताप कार्यालय की पेटिका में वे कवितायें डाल देते थे जो प्रताप में छप जाती थी। प्रताप के सम्पादक थे गणेश शंकर विद्यार्थी। उन्हें वाजपेयी को खोज निकालने में कठिनाई न हुई और उनके सम्पर्क से उनका 'व्यक्ति विशेष' सदा के

लिए समाप्त हो गया। उनकी कविता प्रताप के अतिरिक्त प्रभा और मर्यादा में भी छपती थी। उनके जीवन काल के प्रारम्भ में उनके कवि का ही वर्चस्व था। बालकृष्ण राव, डा. नगेन्द्र और पन्त जी के सम्पादन में प्रकाशित 'कविभारती' में उनकी कविताओं को भी संकलित किया गया है। यह उनके प्रति विशेष सम्मान था। अनेकानेक कवितायें उस समय की प्रतिनिधि पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं जिसका स्वयं लेखक को भी कोई ध्यान नहीं है तथापि उनकी कविताओं का एक संकलन १९४१ में "ओस की बूंद" के नाम से प्रकााशित हुआ। इस संकलन में १९ कविताएं संग्रहीत हैं।

वाजपेयी जी की इन १९ कविताओं को भी छायावादी, रोमांटिक और यथार्थवादी धरातल पर देखा जा सकता है। छायावादी कविताओं में पंत और निराला की कविताओं की छाप प्रतीत होती है। रोमांटिक कविताओं में प्रेम, नैराश्य और अदृश्य के विधान की कवितायें हैं जबकि प्रगतिवादी कविताओं में शुद्ध यथार्थ वाद के दर्शन होते है। बाल गंगाधर तिलक के दिवंगत होने पर कवि ने १९२० में 'दीप - निवार्ण ' शीर्षक से जो कविता लिखी थी वह 'संसार' में प्रकाशित हुई थी। 'सरिता से', 'अर्ध्यदान', 'अनुसंधान' और 'पनघट' उनकी छायावाद प्रभावित कविताएं है; 'विर्मश', मेरा मन, 'एक प्रश्न', 'नाविक से', 'उपालम्भ' रोमांटिक; और प्रगतिवादी स्वर को मुखर करने वाली कविताओं में 'जागरण गीत' १, 'जागरण गीत' २, 'विद्रोह गीत', 'पगली', 'अन्न लक्ष्मी से', 'अन्धकार' 'आत्म' - दर्शन और 'भाई बहिन' कविताएँ है।

वाजपेयी जी ने अपनी ओस की बूंद की भूमिका 'अवलोकन' में अपनी काव्य सम्बन्धी मान्यताओं को अभिव्यक्ति दी है :-

> " कविता मानवात्मा का वह गुंजन है जो जीवन के
> अमर्यादित सुखों और दुःखों से उभर कर वाणी का
> रूप प्राप्त करता है।"

वाजपेयी जी की कविताएँ "छन्दोबद्ध , गेय और लालित्यपूर्ण हैं। लाक्षणिकता, नवीन अप्रस्तुत विधान और प्रतीक योजना आदि छायावादी कला- पक्षीय गुणों की गरिमा से ये कविताएं सर्वथा ओत प्रोत हैं और 'एक सम्भावित उज्ज्वल भविष्य का आभास देती है।"१

'पनघट' कविता उन दिनों प्राय: प्रभावी थी क्योंकि कविता पर निराला की 'तुम और मैं' कविता का प्रभाव स्पष्ट था। पंत की कविता 'छाया' को भी विषयान्तर कर उन्होंने अनुसरण किया है।' आत्मदर्शन' कवि की ऐसी कविता है जिसने दिनकर की प्रगतिवादी रचनाओं को प्रभावित किया है।'पय पीने को धरा कहां, उच्छिष्ट अन्न तक को अधीन , से दिनकर की कविता प्रेरित हुई 'वत्स

१. डॉ. विश्वनाथ गौड़ - पूज्य वाजपेयी कवि रूप में (निबन्ध)

वत्स ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं" भगवतीप्रसाद वाजपेयी प्रगतिवाद के प्रवर्तक कवि के यथार्थ - दृष्टा व सृजक थे ।

नाटककार

भगवती प्रसाद वाजपेयी -

हिन्दी में नाटककारों की प्रायः ऐतिहासिक और पौराणिक नाटकों की रचना में विशेष रूचि रही है । सामाजिक नाटकों में स्त्री - दुर्दशा, मद्यपान, जातिप्रथा के दुष्परिणामों और पतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा को ही नाटकों का विषय बनाया गया था । अंग्रेजी नाटककारों का भी इस दृष्टि से प्रभाव पड़ने लगा था कि सामाजिक समस्या भी नाटको में स्थान पाने लगी थी । किन्तु, वाजपेयी जी ने अपने नाटक 'छलना' में आत्म विश्वास और आत्म गौरव की भावना को प्रमुख स्थान दिया हैं । एक ओर यदि आदर्श की रचना है तो, यथार्थ से भी मुंह नहीं मोड़ा गया है । वाजपेयी जी की 'छलना' में व्यावसायिक सभ्यता के युग में स्त्री- पुरूष के सम्बन्धों की विवेचना 'रूपक' के स्वरूप में अभिव्यक्त करने की चेष्टा की गई है । नाटक में तीन स्त्री पात्र है - कल्पना, कामना और चम्पी, दो पुरूष पात्र है - बलराज और विलासचन्द्र । ये पात्र राजश्री और तामसी प्रवृत्तियों के प्रतीक और प्रतिनिधि हैं । चम्पी ऐसा पात्र है जो इन वृत्तियों से प्रभावित होकर भी सात्विक वृत्ति की ओर उन्मुख है। कल्पना 'शारीरिक भोग से परे कोई आत्मिक आनन्द नाम की वस्तु को संसार में' नहीं मानती । वह नारी स्वतंत्रता की अभिभाषक भी है । पुरूषों की भांति वह भी 'खुली वायु में घूमना, टहलना सखियों का संसार बनाना ------ और अपने लिए आवश्यक वस्त्राभूषणों की याचना करना स्त्री , के लिए न कभी आवश्यक है न आनन्द कारक , तुम यही कहना चाहते हो ?' ऐसा कहकर पुरूष की नकल करती है । चम्पी एक दम विपरीत है। वह समाज की दरिद्रता और अज्ञान में भी संतुष्ट प्रतीत होती है। भिखारिनी है किन्तु विद्रोह हीन। चम्पी तमोगुणी प्रसूत सात्विकी प्रतीत होती है । इस नाटक के माध्यम से समाज की आदर्शनहीनता के दम्भ को अभिव्यक्त किया गया । 'वस्तुतः मनुष्य में जो वृत्तियां विद्यमान है उनको ही हम चरम लक्ष्य मान लेते है । ये वृत्तियां वह कच्चा माल है जिनसे किसी श्रेष्टतर वस्तु का निर्माण होना चाहिए ।"[१]

इस युग में तीन ऐसे नाटक लिखे गए जो सामाजिक स्वरूप को प्रतीको द्वारा प्रस्तुत करते थे । सुमित्रानन्दन पंत का 'ज्योत्सना', प्रसाद का, 'कामना' और वाजपेयी जी का 'छलनो' । डा. नगेन्द्र का मत है कि 'छलना' एक समस्या नाट्य - रूपक है जिसका उत्तर 'छलना' नाटक में नहीं है इसीलिए उसका नाम 'छलना' है ।

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी - नाट्यकला का मूर्तरूप 'छलना नाटक

किन्तु, यह निर्विवाद है कि छलना समाज की मनोविज्ञान परक दृष्टि का नारी केन्द्रित अध्ययन है जिसमें परिवार के मध्यम वर्गीय स्वरूप में नारी का स्त्री के उपयुक्त असन्तोष स्वाभाविक समस्या है।१

डॉ. शंकर देव अवतरे ने सम्पूर्ण मनोविश्लेषणात्मक विवेचन कर यह निष्कर्ष दिया है कि 'जिस प्रकार आज तक मानव मन अपनी ही वृत्तियों की परस्पर छलना में सत्य का आदर्शवादी आलोक, यथार्थ चर्वणा के सहारे उपलब्ध करता आया है उसी प्रकार वह अनन्त भविष्य में भी उसे उत्तरोत्तर सीमन्तित रूप में ग्रहण करता रहेगा। इस दृष्टि से इस नाटक का छलना नाम यथार्थ की भौतिक व्यवस्था में स्वयं उगने वाले आदर्श के रूप में सत्य का ही अभियान है।" २

'राय पिथौरा' वाजपेयी जी का दूसरा नाटक है। यह नाटक सम्राट पृथ्वीराज चौहान से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटक है। इस सम्बन्ध में डॉ. रामचरण महेन्द्र का मत है कि - 'महाराज पृथ्वीराज ऐसे भारतीय नर- रत्न थे, जिनकी वीरता अपने जीवन और शासनकाल में अद्वितीय थी, पर मानवता के पुजारी होने के नाते भी वे एक आदर्श महापुरूष थे। इस नाटक में उस चरित्र को अपने विविध पक्षों में प्रस्तुत करना नाटककार का उद्देश्य रहा है। साथ ही आधुनिक राजनीति। भारतीय संस्कृति कला- साधना, शरणागत की रक्षा, मर्यादा- पालन, गौरव- रक्षा की परम्परा, आतिथ्य सत्कार, नैतिक - निष्ठा आदि विषयों पर महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए गए है।'३

'राय पिथौरा' में एक आंतरिक दर्शन है जो आधुनिक राजनीति का पथ प्रदर्शक भी है' 'सम्पूर्ण खण्ड राज्यों को संगठित करना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए (पृ. १२) 'जब मनुष्य के भीतर अदम्य तृष्णा जागरित होती है तो उसका शील, सौजन्य और कर्त्तव्य का संतुलन भी कष्ट हो जाता है। ' (पृ. ९४) 'जीवन - जगत सम्बन्धी अनेक विचार भी 'राय पिथौरा' में यत्र तत्र मिलते है जो सार्वभौमिक और शास्वत है-' विधाता का कोई ऐसा विधान नहीं जिसमें मानवी दुर्बलता का हाथ न हो, " पक्ष और विपक्ष मन के खेल होते हैं। कर्म का फल उसी को मिलता है, जो उसको करता है। कर्त्ता कारण और दोषी होता है।' (पृ. १३४) राजा की कुशलता तो युद्ध क्षेत्र में ही सन्तोष की सांस लेती है। (पृ. १४०) अनेक ऐसे आर्ष वाक्य है जिनसे वाजपेयी जी की सात्विक वृत्ति का परिचय मिलता है। नाटक में कई सरस गीत भी है - 'लुट गई निधियां सुधियां न जागी' पार्श्व गीत है। शेष सभी गीत भावात्मक स्वरूप अभिव्यक्त करते हैं।'४

१. डा. नगे
२. डा शंकर देव अवतारें - छलना एक मनोवैज्ञानिक रूपक
३. डॉ. रामचरण महेन्द्र वाजपेयी जी का ऐतिहासिक नाटक ' राय पिथौरा'
४. वही -

कहानीकार वाजपेयी -

वाजपेयी जी एक सशक्त कथाकार भी है। वाजपेयी जी की प्रकाशित कहानियों की संख्या लगभग तीन सौ पचास हैं उनकी सबसे पहली कहानी यमुना १९२२ में जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित श्री शारदा में प्रकाशित हुई थी। उनके १६ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए है-

१. मधुपर्क (१९२९) २. दीपमालिका (१९३१) ३. हिलोर (१९३९) ४. पुष्पकरिणी (१९३९) ५. खाली बोतल (१९४०) ६. मेरे सपने (१९४०) ७. ज्वार भाटा (१९४०) ८. कला की दृष्टि (१९४२) ९. उपहार (१९४३) १०. अंगारे (१९४४) ११. उतार चढ़ाव (१९५०) १२. स्नेह आरती और लौ (१९६०) १३. लोकप्रिय कहानियाँ (१९६५) १४. मेरी श्रेष्ठ कहानियां (१९६५) १५. होटल का कमरा (१९६५) १६. कवाड़ी का ताजमहल (१९६६)

कुछ प्रसिद्ध कहानियों का साहित्यिक समादर हुआ। 'समर्पण' लखनऊ आकाशवाणी से प्रसारित हुई थी। प्रेमचन्द्र द्वारा प्रंशसित कहानी 'प्रलोभन' का प्रकाशन 'सरस्वती' में हुआ था। 'ह्रदयगति' मानव मन की तृप्ति पर और 'शबनम' मुस्लमान रमणी के शराबी पति की व्यथा भरी कथा है। 'रेशम के फन्दे', 'रजनी', 'निदिया लागी', 'प्रतिदान मिठाईवाला', 'टिकुली', 'ट्रेन पर', 'सूखी लकड़ी', 'बरात में', 'चार साथी', 'मैना' आदि विख्यात कहानियां मानव जीवन के सुकोमल सन्दर्भों की कहानियां है। प्रेमचन्द और प्रसाद युग में होने पर भी वाजपेयी जी की कहानियां उनसे सर्वथा भिन्न है। कहानी तो आकार में छोटी होती है किन्तु, स्टीफन ज्विग की भांति -नीहारिका' के जून १९६३ के अंक में प्रकाशित कहानी 'रूप और भाव' इकतीस पृष्ठ की लम्बी कथा भी है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति करने में सक्षम साहित्यिक सौष्ठव से युक्त वाजपेयी जी द्वारा प्रमुख व्यवहारिक बोलचाल की भाषा, भाषा पर आपके असाधारण अधिकार की परिचायिका है।"[१]

उपन्यासकार वाजपेयी जी -

वाजपेयी जी ने लगभग तीन दर्जन उपन्यास लिखे है। १९२६ से १९६७ तक लगभग ४५ उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे। वाजपेयी जी ने प्राय: समस्त रचनाओं को प्रकाशकों को बेच दिया था उनकी कोई रायल्टी उन्हें नहीं मिली । इन पैतालीस उपन्यासों में से - ऐसे उपन्यास है जो भिन्न नाम से पुनः प्रकाशित हुए हैं। १९२९ में प्रकाशित 'मुस्कान'१९३२ में 'त्यागमयी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार प्रेम निवार्ह (१९३४)' निर्यातन ' नाम से १९५५ में प्रकाशित हुआ।

१. आलोचना के नए आयाम और वाजपेयी की कहानियां।

१९५० में प्रकाशित 'गुप्तधन' १९५७ में 'एकदा' शीर्षक से और १९५२ में प्रकाशित 'धरती की साँस' का प्रकाशन 'नदी और नाँव शीर्षक से १९६६ में प्रकाशित हुआ।

समस्त उपन्यासों की तालिका इस प्रकार है :-

क्र.	वर्ष	उपन्यास	विवरण
१.	१९२६	प्रेमपथ	"भगवती प्रसाद जी ने यह बहुत ही अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्त्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप चकित रह जाएंगे। भूमिका - उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द्र
२.	१९२८	मीठी चुटकी	अकेली नारी के सामाजिक जीवन की कहानी इस उपन्यास के तीन लेखक है - भगवती प्रसाद वाजपेयी विजय वर्मा और शम्भु दयाल सक्सेना
३.	१९२८	अनाथ पत्नी	भूमिका लेखक उपन्यासकार विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक है। ब्राह्मण समाज की कुरीतियां प्रमुख विषय है।
४.	१९२९	मुस्कान	१९३२ में यही कृति 'त्यागमयी' के नाम से प्रकाशित हुई है। इसमें युवक - युवती के सहज आकर्षण की कथा है।
५.	१९३४	प्रेम निर्वाह	१९५५ में यही उपन्यास 'निर्यातन' शीर्षक से छपा है। इसमें आकर्षण, प्रेम और नैतिकता की त्रिकोणीय भाव भूमि है।
६.	१९३४	लालिमा	उपन्यास के साथ श्रीयुत प्रफुल्ल चन्द्र ओझा जी के नाम संलग्न होने से इसकी प्रभाविष्णुता बढ़ गई है। कथा में निस्वार्थ प्रेम की परिणति आत्म वलिदान से हुई है।
७.	१९३६	पतिता की साधना	सामाजिक समस्या की गाथा का मील का पत्थर है।
८.	१९३७	पिपासा	प्रेमपथ की भांति प्रेम और कर्त्तव्य के अर्न्द्वन्द्व का चित्रण करती हुई यह एक भावनात्मक कृति है।
९.	१९४०	दो बहिनें	इस उपन्यास का नाट्य रुपान्तर आकाशवाणी से प्रसारित हो चुका है। उपन्यास में त्रिकोणी प्रेम प्रसंग का संघर्ष अंग्रेजी उपन्यासकार हार्डी की भांति प्रस्तुत है।
१०.	१९५०	निमंत्रण	हिन्दी उपन्यास साहित्य में नैतिक मूल्यों का सृजन कारक उपन्यास है।
११.	१९५०	गुप्तधन	इसे यू०पी० बोर्ड की इण्टर परीक्षा के लिए पाठ्यक्रम १९५२ में निर्धारित किया गया था।१९५६ में यह 'एकदा' शीर्षक से पुनः प्रकाशित किया गया है।
१२.	१९५१	चलते- चलते	प्रेम प्रसंग की आत्मपरक शैली में लिखा गया अन्यतम उपन्यास है।
१३.	१९५२	पतवार	१९६४ में 'राजपथ' शीर्षक से यह पुनः प्रकाशित है। कानपुर विश्वविद्या - लय ने इसे बी० ए० के पाठ्यक्रम में निर्धारित किया था। गांधी वादी विचारों को प्रस्तुत करने वाली यह कृति सत्य, अहिंसा न्याय के मानवीय सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करती है।,

१४. १९५४	धरती की सांस	१९६६ में यह उपन्यास नदी और नाव शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।
१५. १९५४	मनुष्य और देवता	मानवता के आदर्श को व्याख्यायित करने वाला उपन्यास है।
१६. १९५५	भूदान	गांधी दर्शन के व्यवहारिक प्रयोग का विनावा वादी कार्यक्रम उपन्यास का मूल आख्यान है।
१७. १९५५	यथार्थ से आगे	वर्तमान और भविष्य के सामाजिक स्वरुप का उपन्यास है।
१८. १९५६	विश्वास का बल	उपन्यास में पारिवारिक प्रेम की कथा है।
१९. १९५६	सूनी राह	उपन्यास का सम्प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया जा चुका है।
२०. १९५७	निरन्तर	मनोदशाओं और परम्पराओं का उपन्यास है।
२१. १९५९	गोमती के तट पर	भारतीय आस्थावादी आदर्श संस्कृति का सामाजिक स्वरूप व्याख्यापित करने वाला उपन्यास
२२. १९५९	रात और प्रभात	कर्त्तव्य से प्रेम की ओर ---- उपन्यास
२३. १९६०	उनसे न कहना	अहंकारी प्रवृत्ति का पारिवारिक सामाजिक चित्रण
२४. १९६०	दरार और धुवां	लघु उपन्यास में प्रेम की सामाजिक स्थिति का वर्णन
२५. १९६०	सपना बिक गया	धारावाहिक रुप से साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित एक सुविख्यात कृति।
२६. १९६१	एक प्रश्न	परिवार का मनोवैज्ञानिक अध्ययन।
२७. १९६२	टूटा टी सैट	संवेदनशील विघटन का संयोजक उपन्यास
२८. १९६२	दूखन लागे नैन	नारी जीवन की कुंठा का चित्रण कारक उपन्यास
२९. १९६२	चन्दन और पानी	जीवन के नैसर्गिक स्वरुप का चित्रण
३०. १९६३	टूटते बन्धन	आधुनिक विचारधारा और उसका औचित्य
३१. १९६३	कपट निद्रा	व्यक्ति के अन्तमुखी और वर्हिमुखी व्यापारों का सामाजिक चिन्तन इसका प्रमुख विषय है।
३२. १९६५	अधिकार का प्रश्न	नई और पुरानी पीढ़ी का यथार्थपूर्ण आदर्श चित्रण
३३. १९६५	स्वप्नों की गोद	भोग्यवादी जीवन - सुखों की व्याख्या प्रमुख है।
३४. १९६६	मुझे मालूम न था	स्त्री - पुरुष के अनेक आयामी सम्बन्धों की व्याख्या है।
३५. १९६६	एक स्वर आंसू का	आंसुओं से भीगे प्रेम दर्शन का आख्यान
३६. १९६६	छोटे साहब	जीवन के घात प्रतिघात की व्याख्या।
३७. १९६६	विजय श्री	अंधकार के विरोध में प्रकाश की उपासना का केन्द्र
३८. १९६७	अधूरा स्वर्ग	आस्तिकता की विचारभूमि का आख्यान
३९. १९६७	कर्म पथ	प्रेम और कर्म का आख्यान
४०. १९६७	वासना से पर	सात्विक और वासनाजन्य वृत्तियों का चित्रण

विविध विधाओं के सृजक : भगवती प्रसाद वाजपेयी-

क्षेमचन्द सुमन हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के सृजन संसार के विषय में उनका मत है - " वाजपेयी जी ने यद्यपि उपन्यास और कथा लेखन में ही अधिक ख्याति अर्जित की है, तथापि आजीविका निर्वाह के लिए उन्होंने दो नाटक (छलना और राय पिथौरा) भी प्रकाशकों के अनुरोध पर लिखे हैं। 'बाल साहित्य' के सृजन की दिशा में भी उनकी देन कम नहीं है। उनकी ऐसी कृतियों में 'आकाश पाताल की बातें, 'बालकों के शिष्टाचार', 'शिवाजी', 'बालक प्रह्लाद', 'बालक ध्रुव', 'हमारा देश', 'नागरिक शास्त्र की कहानियां', तथा 'प्रौढ़ शिक्षा की योजना', आदि विशेष उल्लेखनीय। उनकी सम्पादित पुस्तकों में ' प्रतिनिधि कहानियां, हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियां', 'नवकथा', 'नवीन पद्य - संग्रह', और 'युगारम्भ' आदि है।' कथा भारती उनकी एक अभिनव सम्पादित कृति है।१

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि ४५ उपन्यास और ३०० कहानियों के कथा - शिल्पी भगवती प्रसाद वाजपेयी जी ने वाल साहित्य, और सम्पादन में भी महत्वपूर्ण योगदान किया हैं। उनकी कविताओं का एक मात्र संग्रह 'ओस की बूंद' १९४२ में प्रकाशित हुई है। प्रयाग विश्व -विद्यालय के कुलपति डॉ. अमरनाथ झां ने लिखा है - 'कवि तो बहुत है। उपन्यास लिखने वाले भी कम नहीं, इधर नाट्यकार भी कई अच्छे ग्रंथ लिख रहे हैं, परन्तु अच्छी कहानियां लिखने वाले चार - पांच से अधिक नहीं। इन चार - पांच में वाजपेयी जी का स्थान है।[२] चार पांच में मुशी प्रेमचन्द, विश्वम्मर नाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, प्रसाद, के साथ भगवती प्रसाद वाजपेयी का नाम लिखा जाना वाजपेयी जी की रचना क्षमता, करूणा एवं उनके रचना शिल्य की साहित्यिक स्वीकृति है। डा. झा ने "मिठाईवाला" शीर्षक कहानी में करूण- रस की धारा का उल्लेख किया है। गाने वाला स्वयं 'मिठाई वाला' बनकर बच्चों के बीच में अपनी व्यथा भूलता है ठीक वैसे ही जैसे रवीन्द्र नाथ टैगोर का 'कावुली वाला'। उनके १७ कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

१. क्षेमचन्द 'सुमन' वाजपेयी जी - जीवन के विविध सन्दर्भ
२. अमरनाथ झां: श्रेष्ठ कला की कहानियां

सम्पादन-

वाजपेयी जी ने समाचार पत्र और पत्रिकाओं का भी कुशल सम्पादन किया है। जीवन के विविध आयामों ने उन्हें कहानीकार तो बनाया ही, जीवन यापन के लिए पत्र पत्रिकाओं का सम्पादक भी बना दिया। वाजपेयी जी ने एक दैनिक में सम्पादन का कार्य किया है। कानपुर से निकलने वाले 'दैनिक विक्रम' के वे उपसम्पादक कहने भर को थे। पत्र का सारा सम्पादन - दायित्व उन्हीं का था। मासिक पत्रों में तीन का सम्पादन/ उपसम्पादन उन्होंने कानपुर में ही रह कर किया। श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा, उद्योगपति उन दिनों, कानुपर में संसार का प्रकाशन कर रहे थे; वाजपेयी जी 'संसार' मासिक में उपसम्पादक अवश्य थे पर वे ही सम्पूर्ण सम्पादन करते थे। बाद में उन्हें उनके परिश्रम करने तथा 'संसार' के प्रचलित होने के कारण अरोड़ा जी ने उन्हें 'सम्पादक' पद पर आसीन कर दिया। वाजपेयी जी ने ' आरती ' मासिक का भी कानपुर से ही सम्पादन किया था। अपने लखनऊ प्रवास में श्री दुलारेलाल भार्गव की 'माधुरी' मासिक के वे उप सम्पादक रहे। और अन्त में साहित्य सम्मेलन प्रयाग के साहित्य मंत्री के रूप में उन्होंने प्रयाग से सम्मेलन पत्रिका' का सम्पादन किया।

इस प्रकार वाजपेयी जी ने ४५ उपन्यास ३०० कहानियों १ काव्य संग्रह २ नाटक ६ कृतियों का सम्पादन (कहानियां एवं निबन्ध) ६ दैनिक एवं मासिक पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन और ७ वाल साहित्य पुस्तकों का सृजन किया है। उनके अनेक संस्मरण साहित्यकारों के पास सुरक्षित है। मुंशी प्रेमचन्द ने मर्यादा में उनकी कहानी ' अनधिकार चेष्ठा' प्रकाशित की थी। यह वाजपेयी जी की दूसरी कहानी थी। पारश्रमिक मांगने पर मुंशी प्रेमचन्द ने उन्हें एक पत्र में लिखा था, जिसका उल्लेख क्षेमचन्द सुमन ने किया है।

" यह आपकी अनधिकार चेष्टा है, किन्तु फिर भी पांच रूपये भेजे जा रहे हैं।'

भगवती प्रसाद वाजपेयी का साहित्यकार कानपुर में उत्पन्न हुआ, लखनऊ में बड़ा हुआ और इलाहाबाद में परिपक्व हुआ। कानपुर वह नगर है जिसने उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द, कहानीकार विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र तथा कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन को अपने अंचल में रक्खा। इसी कानपुर में प्रारम्भ से अन्त तक वाजपेयी जी भी रहे। अपने अल्प प्रवास काल में वे लखनऊ और प्रयाग अवश्य रहे पर अन्ततः उनकी आत्मा कानपुर में ही बसती थी। अपने अन्तिम दिनों में वे मस्तमौला बनकर किदवई नगर कानपुर में ही रहते रहे।

कथा शिल्पी कलाकार -

भगवती प्रसाद वाजपेयी एक ऐसे शिल्पी थे जिनके कथा संगठन में समकालीन समाज का यथार्थ अपने वस्तु स्वरूप में उभरकर आया है। आर्थिक दुरावस्था से होकर वे गुजरे थे। प्राय: सभी साहित्यकारों की भूमि आर्थिक मरू से राह बना कर पग चिन्ह छोड़ती गई है। किन्तु, जितनी जीवन-पीड़ा उन्होंने भोगी उतने ही ऊँचे उनके आदर्श होते गए। महात्मा गांधी के अभ्युदय के साथ मुंशी प्रेमचन्द, कौशिक जी, वालकृष्ण शर्मा नवीन सभी ने अपने जीवन में गाँधी - विचार का मूल्य सर्वोपरि रक्खा है, वाजपेयी जी उसका अपवाद नहीं थे। आचार्य रामबहोरी शुक्ल ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है-

" गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित और राष्ट्रीय नैतिकता का सन्देश देने वाले भगवती प्रसाद वाजपेयी की उपन्यास साहित्य में महत्वपूर्ण देन है। वाजपेयी जी कविता, कहानी, और नाटक सभी साहित्यिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्ति हैं। यह अपने सामाजिक उपन्यासों में सामाजिक नैतिकता लेकर चलते हैं। इनका कथानक संगठन बहुत जटिल न होकर सरल और सुसंगठित होता हैं; क्योंकि पात्रों में अधिकांश सरल और निश्चित भावना के व्यक्तित्व मिलते हैं" ।१

गाँधी जी का मानव - प्रेम उनके सम्पूर्ण जीवन का आधार था। अहिंसा 'सत्य और प्रेम का त्रिगुण उनके जीवन का संचालक था। ऐसे अटूट मानव प्रेम की अभिव्यक्ति चाहे कहानियों में हो अथवा उपन्यासों में, यह मानवीय प्रेम ही है जो गाँधी को अमरत्व प्रदान कर सका था। गांधी विचारवादी कवि बाल कृष्ण शर्मा नवीन का मत है कि -

"पण्डित भगवती प्रसाद वाजपेयी ने जिन प्रतिकूल परिस्थितियोंमें साहित्य सेवा की है उन परिस्थितियों में साधारणत: लोग टूट जाते हैं। वाजपेयी जी का जीवन कष्टों में बीता है फिर भी उनका हृदय मानव प्रेम से भरा हैं। यह बड़ी बात है कि कष्टों में जीवन - यापन करने वाले जन बहुधा कटु हो जाते है। भगवती प्रसाद जी इस नियम के अपवाद हैं।"२

उनके जीवन में ऐसे भी प्रसंग है जहां उनके इस मानवी सारल्य का लाभ उठाकर लोगों ने उन्हें ठगा है। विद्यार्थी बनकर फीस जमा करने के बहाने एक दुर्जन उनसे साठ रूपया ठग ले गया और दूसरे दिन मौज से वह होटल में खाना खा रहा था जिसने वाजपेयी जी को पहचानने से भी इन्कार कर दिया।

१. आचार्य राम बहोरी शुक्ल - सम्मति - भ. प्र. वाज अभिनन्दन ग्रंथ
२. बाल कृष्ण शर्मा नवीन - वहीं

भगवती प्रसाद वाजपेयी बहुत संवेद्य हृदय के व्यक्ति थे । छोटी - छोटी घटनाएं उन्हें संवेदन शील बना देती थी और वे ही उनकी कहानियों में उसी प्रकार उतरती चली गईं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस भाव को जानकर अपना मन्तव्य प्रकट किया है -

"कहीं - कहीं चलते हुए वृत्त के बीच में परिस्थितियों का नाटकीय ढंग का एक छोटा सा चित्र भी आ जाता है । इस प्रकार के चित्रों में चारों ओर सुनाई पड़ते हुए शब्दों का संघात भी सामने रख जाता है, जैसे, बाजार की सड़क का कोलाहल -"मोटरो, तांगो और इक्कों के आने - जाने का मिलित स्वर । चमचमाती हुई कार का म्यूजीकल हार्न । ...बचना भइये, राजा बाबू ... अक्खा तिवारी जी है, नमस्कार । हटना । हटना भा .. भाई । ...... आदाव अर्ज दरोगा जी' (पुष्कारिणी में 'चोर' शीर्षक कहानी)

पंडित भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'निदिया लागी' और 'पैसिल स्कैच' आदि कहानियां सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यंजक घटना और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्र गति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्यवसित होने वाली है ।१

साहित्यिक क्षेत्र में 'वादों' की विविधता और उनसे उत्पन्न साहित्यिक गुटबाजी वास्तविक साहित्यकारों को ऊपर नहीं उठने देती । भगवती प्रसाद वाजपेयी एक ऐसे साहित्यकार थे जो गुट बाजी से सदा ऊपर रहें, न उनके ऊपर किसी 'वाद ' का और न ही किसी विदेशी साहित्य का प्रभाव था । इस दृष्टि से वे प्रेमचन्द से भी भिन्न थे । प्रेमचन्द पर तो चार्ल्स डिकेन्स या कि गाल्सवर्दी का प्रभाव हो भी सकता था पर वाजपेयी जी सदा विदेशी साहित्य से निर्लिप्त थे । मगध वि. वि. के श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र ने इसी सम्बन्ध में अपने भी विचार व्यक्त किए हैं—

" विशुद्ध भारतीय जीवन और समाज में जो कुछ उन्होंने देखा परखा है, उसे ही अपनी कुशल संवेदनशील लेखनी से उरेहा है । मध्यम वर्गीय समस्यायें उनके उपन्यासों और कथाओ मे बेहद तीव्रता और स्वाभाविकता के साथ उभर कर आई हैं । सबसे बड़ी बात यह है कि श्री वाजपेयी जी किसी 'वाद' के चक्कर में कभी नहीं पड़े और न किसी विदेशी प्रवाह में पड़े । उनका सब कुछ अपना है, देसी है ।"

भगवती प्रसाद वाजपेयी के कथा शिल्प में एक कुशल सामाजिक दृष्टा, सामाजिक नैतिकता का उन्नयन और मानवीय सद्‌गुणों को आत्मीयता के वातावरण में सरल सुबोध और नैसर्गिक स्वरूप प्रदान किया गया है । भाषा और भाव प्रेम और सहानुभूति सभी जैसे हमारे आस - पास के अनुभव

१. रामचन्द्र शुक्ल - सम्मति म. प्र. वाजपेयी अभि. ग्रन्थ

हों । वाजपेयी जी तो प्रेम के अद्भुत चितेरे है- वह प्रेम चाहे युवा - युवतियों का हो, दाम्पत्य प्रेम हो या परिवारिक प्रेम हो या राष्ट्र प्रेम - प्रेम की सात्विकता ही उनका साध्य और साधन रहा है ।१

वैचारिक चिन्तन और दर्शन -

भगवती प्रसाद वाजपेयी को उत्तराधिकार में प्रेमचन्द के प्रगतिवादी विचार, यथार्थवादी दृष्टिकोण और सामाजिक चिन्तन मिला था । उन्हें प्रसाद जी की संवेदनशील भावुक आत्मीयता और मानव - मन की अनेकानेक ग्रंथियों के उद्घाटन करने और उन्हें मानवीय दृष्टिकोण के प्रयोग की विरासत भी प्राप्त थी । अत: उनके रचना संसार में प्रेमचन्द का आदर्श अवगुन्ठित यथार्थ और प्रसाद की भावुकता का प्राण - संचरण समन्वित रूप से मिलता है । इसे क्या नाम दिया जाये ? प्रेमचन्द्र और प्रसादोत्तर कथाकारों ने जीवन की यथार्थ भूमि पर कहानी को उतार कर उसे मनोवैज्ञानिक विचारों का जो वायुमण्डल प्रदान किया उन कथाकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी अग्रणी थे । 'युग के वातावरण से प्रभावित वाजपेयी जी ने प्रेमचन्द के यथार्थवादी पथ को ही प्रसादीय भावुकता एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ अभिनवता से पुरस्सर किया ।"२ यथार्थवाद उपन्यास लेखकों के वैचारिक चिन्तन की आधार भूमि है- अन्तर केवल इतना है कि मुंशी प्रेमचन्द समष्टिवादी व्यक्तित्व थे और वाजपेयी जी व्यष्टिमूलक यथार्थवादी थे ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी मानवमन की ग्रन्थियों के उत्सृजक व्याखाता है, मन की गहराइयों के मापक है ओर इन दोनों के परिणाम प्रेम को परिभाषित करने की अद्भुत क्षमता उनमें है ।फ्रायड ने प्रेम का मूल काम - भावना में माना है, उसी का उद्घाटन साहित्य में भी हुआ है । फ्रायड ने प्रेम में पावनता या आदर्श को भी कोई स्थान दिया हैं, इसमें मतभेद है । क्या फ्रायड साहित्य में मात्र काम - वासना जनित कुष्ठाओं को ही उद्घाटित होते देखता है ? यौन जीवन की प्रमुखता ही क्या जीवन का उद्देश्य है ?३ यदि ऐसा होता तो मानवी समाज की सभ्यता - संस्कृति आदिम युग से आगे न बढ पाती । वाजपेयी जी का प्रेम मूलक रचना संसार समाज के सांस्कृतिक परिवेश में सात्विक आदर्शों की रचना करता है जिसमें मन - निर्मल और कलुषहीन हो जाता है । विशेष रूप से उनकी कहानियों में यह परिलक्षित होता है - मध्यमवर्ग और, निम्न वर्ग के समाज से चुनी गई कहानियां 'सूखी लकड़ी' 'निदिया लागी' 'मिठाई वाला' 'आत्मघात' ऐसी ही कहानियां है ।

वर्तमान वैज्ञानिक विचारकों में समाज ने दो महान वैचारिकों को जन्म दिया है । ये दोनों ही विचारक पश्चिम देशों के है । कार्लमार्क्स जर्मनी में जन्मा और अर्थ - दुश्चिन्ताओं से जूझकर इग्लैण्ड में अपने सम्पन्न मित्र ऐंजिल्स के पास रहकर 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के महान आर्थिक - दर्शन का

१. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र - सम्मति म. प्र. वाजपेयी अभि. ग्रन्थ
१. डा. जगदीश नारायण त्रिपाठी - कथा शिल्प का सर्वाधिक प्रभावशाली पक्ष ।

व्याख्याता बना । उसका कार्य क्षेत्र अर्थाश्रित राजनीति था ।दूसरे विचारक और साहित्य दर्शन के विद्वान फ्रायड से आगे के विचारक - चिन्तक थे विद्रोही साहित्यकार डी. एच. लारेंस उनका उन्मुक्त यौन - विचार प्रधान उपन्यास "लेडी चैटरलेज लवर' विवादित और अनेक देशों में प्रतिबन्धित उपन्यास रहा है । वस्तुतः लारेंस ने संसार की इसीलिए उस समय के प्रतिष्ठित सामाजिक लेखकों - शा, गाल्सवर्दी, एच. जी. वैल्स आदि' लेखकों के विरोध में सशक्त दर्शन को भी प्रतिपादित करना पड़ा - यह दर्शन था सैक्स का दर्शन किन्तु यह फ्रायड के यौन - कुण्ठाओं के विपरीत यौन को जीवन संचालिका शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का दर्शन था । लारेंस के अनुसार नर - नारी के बीच में जीवन - पर्यन्त सैक्स के स्वाभाविक रूप की व्याख्या करना ही सामाजिक औचित्य था । वाजपेयी जी ने भी अपने कथालोक में इसी सैक्स का चित्रण किया है । इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि वाजपेयी जी लारेंस से अनुरूप लिख रहे थे या लिखना चाहते थे ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी समाज को अनासक्त यथार्थवादी के रूप में देखते थे । अतः उनके उपन्यासों में भी सैक्स का चित्रण प्रेम की पावनता की रक्षा में अनासक्त यथार्थवादी की भाँति है । यदि वे आसक्त आदर्शवादी होते तो निश्चय ही फायड वादी काम- कुण्ठाओं के अतिरिक्त कुछ न लिखतें । वाजपेयी जी ने यौन का कुत्सित स्वरूप सदा गर्हित समझा । इसलिए, एक पंक्ति में वाजपेयी जी का सैक्स विचार विषय - विवर्धक नहीं विषय संवर्धक है । वह एक जीवन शैली का अंग है- जीवन संचालक नही, जीवन - शैली नही । स्वयं वाजपेयी जी का मानना था कि " जब तक जीवन के रागात्मक उच्छ्वास शब्दों की काया ग्रहण नही करते, तब तक कोई भी कहानी सही अर्थों में कहानी नहीं होती ।" वाजपेयी जी की कहानी अन्तरंग वहिरंग की कलात्मक उच्चता के कारण पठनीय एवं मनन करने योग्य होती है । वाजपेयी जी के परस्पर विरोधी कथन की कमनीयता की तुलना अंग्रेजी उपन्यासकार आस्कर वाइल्ड के पिक्चर ऑफ डोरियनग्रे, के सम्वादों, कामाकाँक्षाओं और आत्म सम्मोहन की मुग्धता से की जा सकती है ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी का कथाकार अपने पात्रों की जटिल एवं क्लिष्ट पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में निरन्तर व्यस्त है । उपन्यासकार के पात्र पूर्ण रूप से आज के है और हमारे ही बीच के है । वे बुरी तरह से उलझनों में उलझे हैं, दिशाहीन होकर भी निस्तार चाहते हैं । उनकी सामाजिक चेतना सामाजिकों की कुण्ठाएँ, सांस्कृतिक संक्रान्ति, चेतन प्राणी का अभिशप्त जीवन और विकृतिओं के जंजाल से बुना हुआ संत्रास- इस सबका समाधान करना है उपन्यासकार वाजपेयी को अपने उपन्यासों में ।

१९२६ से १९४९ तक निरन्तर संघर्ष करने वाले कथाकार वाजपेयी को नए जीवन - दर्शन की खोज थी । आदर्श और दार्शनिक स्वरूप को छोड़ते - पकड़ते जव वे यथार्थ की भाव - भूमि पर स्थिर हुए तब उनमें व्यक्तिवादी, भाग्यवादी प्रवृत्तियों ने भी स्थान पाया किन्तु प्रेम और निराशा के ताने

बाने से बुनी गई कथायें मानव - सुलभ वृत्ति के नैसर्गिक रूप में प्रकट हुई। वाजपेयी जी उपन्यास को साहित्य की वह अक्षुण्य विधा मानते है, "जो जीवन के अधिकाधिक निकट पहुँचकर नव - नव प्राण संचार ही नहीं करती, उसको सतत अक्षरण शील और प्रबुद्ध बनाती रहती है। इसलिए जीवन का जैसा सम्पूर्ण उद्घाटन उपन्यास में सम्भव है, वैसा अन्यत्र नहीं। यह केवल प्रबल संवेगों तक ही सीमित रहता है।" यह स्पष्ट है कि उनकी कथाएँ जीवन के सन्निकट हैं, और जीवन की समस्याओं को स्पर्श करती है। अतः यह सत्य है कि वाजपेयी जी कला के सम्बन्ध में प्रगतिशील तथा अत्यन्त प्रौढ़ विचारों से सम्पन्न हैं। भले ही उनके पात्र रोमांटिक वृत्ति के हों किन्तु, वे प्रगतिशील भावनाओं से सम्पृक्त हुए बिना नहीं रहते।

भगवती प्रसाद वाजपेयी पहले मानवतावादी है, उपरान्त व्यक्तिनिष्ठ व्यक्ति को उन्होंने अपने चिन्तन का केन्द्र बिन्दु बनाया है। किसी 'वाद' से प्रेरित होकर उन्होंने अपने उपन्यासों की रचना नही की। उनका सम्पूर्ण विचार मानव और उसकी विविधताओं से परिपूर्ण बहुरंगा वातावरण है। वस्तुतः जहां भी मानवी पीड़ा, दुःख, व्यथा, वेदना, असंगति का आयाम उन्होंने पाया, उपन्यासों की रचना भी इसी मानवी उत्पीड़न के शमन और संवेदन के लिए प्रारम्भ होती गई और एक विशाल उपन्यास - साहित्य समाज को चित्रित करता रहा। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व में भी वे सदा- सर्वदा आचरण के सौन्दर्य को प्रतिष्ठित करते रहे। उनका मन्तव्य था -

"मैं सत्य के सौन्दर्य का पुजारी हूँ, मधु का नही। सत्य का ही दर्शन, चिन्तन और मन्थन, मैं साहित्य में करना और देखना चाहता हूँ।"

नारी समस्याओं के प्रति भी वाजपेयी जी उदास नही है। अपितु नारी जागरण को उन्होंने दो दृष्टियों से देखा है - एक अशिक्षा और दूसरा उसकी आर्थिक परवशता। हिन्दू नारी के विषय में उनका कथन है कि —

"हिन्दू नारी जीवित होकर भी मृतिका है, पाषाण है। शिलाखण्ड की भांति उसे शब्दहीन, गतिहीन, निस्पन्द, निश्चल और निश्चेस्ट होकर रहना पड़ता है।"

"वस्तुतः उपन्यासकार ने पुरुष और स्त्री के प्रत्येक वर्ग और कोटि का चित्रण अपनी रचनाओं में कर दिया है। ये सब पात्र बड़े रोचक है और प्रेम और यौन (या सैक्स) की भावनाओं से पीड़ित रहते हैं। उनके कुछ पात्र अवचेतन मन से भी प्रचुर प्रभावित है। प्रकट है कि अवचेतन मन से प्रभावित पात्र कितना भयंकर हो जाता है। वह पशु के समान विवेक भी भूल जाता है। कुल मिलाकर वाजपेयी जी के पात्र रोचक और प्रभाव वाले हैं।"

उपर्युक्त कथन में डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने वाजपेयी जी के विचार और दर्शन का सार संग्रहीत कर दिया है।

मनोविज्ञान के वैचारिक धरातल पर वाजपेयी जी का फ्रायड वादी चिन्तन पर स्वतंत्र मत है। फ्रायड प्रेम के प्रत्येक स्वरूप का आधार काम - भावना को मानता है और उसी का उद्घाटन वह

१. इन्द्रपाल सिंह - कहानियों क शिल्प यंयेजन
२. वहीं

साहित्य में देखता है। उसके विचार से साहित्य अवचेतन मन - ऐसा विस्फोट है जो काम जनित कुष्ठाओं का परिणाम है। यदि यह विचार ही सत्य होता तो "प्रेम में पावनता अथवा आदर्श की कल्पना भी सम्भव नहीं है तथा साहित्य केवल यौन वर्जनाओं - जनित कुष्ठाओं और विक्षोभों की अभिव्यक्ति मात्र होता; काम- कुणओं का ही उन्मीलन करता; प्रेम का स्वस्थ एवं स्वाभाविक उद्घाटन नहीं होता। क्या यौन - वर्जनाएँ ही सर्वत्र जीवन में व्याप्त है? किन्तु, वाजपेयी जी के चिन्तन ने, उनके जीवन दर्शन एवं व्यवहार में "प्रेम के निष्कलुष, पावन तथा स्पृहणीय स्वरूप को भी चित्रित किया है।'

वाजपेयी जी की कहानियों के कथानक घटना प्रधान भले ही न हों किन्तु, वे चरित्र प्रधान अवश्य है। उनके पात्र जीवन और जगत के प्राणी होते हुए भी अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर आते हैं। हम सहज ही कह सकते है कि वाजपेयी जी के कथानक अन्तरंग और वहिरंग दोनों का ही कलात्मक संगम प्रस्तुत करते हैं।

संसार और जीवन की क्षणभंगुरता को वाजपेयी जी ने निकट से जाना है। उपन्यास कार इस जीवन को ठीक वैसे ही भोगता है जैसे शरद के गृहदाह की 'अचला' जो आग में घिरी थी मानो उपन्यासकार स्वयं आग में घिरा हो।

प्रेमचन्द परम्परा के अभिभाषक -

भगवती प्रसाद वाजपेयी का उपन्यास क्षेत्र में प्रवेश प्रेमचन्द जी के उपरान्त हुआ था। जैनेन्द्र और भगवती प्रसाद वाजपेयी ऐसे कथाकारों में है जिन्होंने प्रेमचन्द जी के आदर्शोन्मुखी यथार्थ को साहित्य में बहुत आगे तक बढ़ाया। आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल का लोक मंगल का सिद्धान्त, जयशंकर प्रसाद का प्रसादात्मक आदर्शवाद और प्रेमचन्द जी के प्रारंम्भिक उपन्यासों का उद्देश्य समाज- सापेक्ष और समाज- सुधारक का था। वाजपेयी जी के कथानकों का भी स्वर आदर्शवादी है। किन्तु, यह आदर्शवादी उद्देश्य मूलक कथानक यथार्थ की भूमि से उत्पन्न हुआ है। इसीलिए वाजपेयी जी के उपन्यासों को प्रेमचन्द की परम्परा का विकास चरण माना जाता रहा। वाजपेयी जी ने भले ही समाज की कुरूपता को देखा ही नही स्वयं भोगा है तथापि उन्होंने समाज की सुन्दरताओं को या सुन्दरता की सम्भावना को भी समाज में सही सही देखा है।

'प्रेमपथ' के छपते समय प्रेमचन्द जी ने उसकी भूमिका लिखी थी जिसमें उन्होंने स्वयं वाजपेयी जी को आर्शीवाद दिया था, 'भगवती प्रसाद वाजपेयी ने यह बहुत अच्छी वस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्तव्य था अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप चकित रह जाएंगे।'[१]

प्रेमचन्द और वाजपेयी जी दोनों ही यथार्थवादी कहानीकार है, तथापि दोनों के दृष्टि कोणों में अन्तर है। ' प्रेमचन्द जी सामाजिक द्वन्द्व का चित्रण करने के कारण समष्टिमूलक यथार्थवादी है और वाजपेयी जी मन के द्वन्द्व का अंकन करने के कारण व्यक्तिनिष्ठ यथार्थवादी कथानकों के सर्जक हैं। वाजपेयी जी मानवमन की गहराइयों के मापक है। उनकी तुलना अंग्रेजी विद्रोही उपन्यासकार डी० एच० लारेंस से की जा सकती है।[२]

१. प्रेमचन्द प्रेम पथ - भूमिका
२. डा० जगदीश नारायण तिवारी - वाजपेयी के कथा शिल्प का प्रभावशाली पक्ष.

प्रेमचन्द ने स्वयं 'प्रेमपथ' पर एक आलोचनात्मक निबन्ध लिखा है। यह रचना १९२६ की है और निरन्तर दस वर्षों तक प्रेमचन्द स्वयं उपन्यास लिखते रहे है। उनका प्रेमपथ पर स्पष्ट अभिमत है, 'वासना कैसे - कैसे कपट वेश धारण करती है - कभी दार्शनिक बन जाती है, कभी भक्ति के रूप में नजर आती है, पर है वह वासना ही।'[१] प्रेमचन्द का सेवासदन जिस यथार्थ की भूमि से होता हुआ समाज में सुव्यवस्था और नारी उद्धार तथा स्वावलम्ब की ओर प्रवृत्त होता है। प्रेमपथ भी वैसा एक प्रयास है। इन दोनों उपन्यासों में युवा - विधवा जीवन की ही कहानी है और उन्हें दिशा देने का एक प्रयास भी। किन्तु वाजपेयी जी के उपन्यासो का चित्र फलक इतना व्यापक नहीं हो सका जितना प्रेमचन्द ने समाज के धरातल पर दिया है। कर्मभूमि की गाँधीवादी एक झलक हमें राजपथ में मिल सकती है परन्तु वाजपेयी जी प्रेम की विभिन्न स्थितियों के चितेरे है जिनका निर्वाह उन्होंने मानव मनोविज्ञान की सूझबूझ से किया है।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्रेम का निर्वाह है, वाह्य, अनुभूत और देखे हुए प्रेम की गाथा जिनमें वाणी भावना, जीवन होते हुए भी, मूर्तियों का अधिपत्य है, कल्पना का प्राचुर्य है। 'पिपासा' का नायक कवि है। समाजवादी, गरीब, बेकार और ग्रेजुएट युवा। शकुन्तला इसके जज मित्र नरेन्द्र की पत्नी है। वह पति को प्रेम तो करती है पर आकृष्ट है कवि कमलनयन की ओर यही संघर्ष बिन्दु है। सम्पूर्ण परिदृश्य में न्याय प्रियता का ढकोसला है, प्रेम का विरूप है, सत्य और समाजवाद के खोखले आदर्श है परन्तु वाजपेयी जी ने भावनात्मकता के आवेग में चेतना को प्रवाहमान बना न केवल कथानक को संवेद्य बना दिया हैं अपितु पात्र भी सैंसिटिव हो गये है। यही उनकी विशेषता है।

वाजपेयी जी के समकालीन उपन्यासकारों में विश्वम्भर शर्मा कौशिक का नाम उल्लेखनीय है। प्रेमचन्द की परम्परा को अग्रगण्य बनाने में इनका विशेष स्थान है।

शर्मा जी ने भी भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों पर अपना मन्तव्य प्रकट किया है। 'अनाथ पत्नी' शीर्षक, वाजपेयी जी का उपन्यास १९२९ मे प्रकाशित हुआ था जिसमें "कान्यकुब्ज ब्राहमणों की उस कुरीति को लक्ष्य किया गया है जो इस वीसवीं सदी में भी उक्त जाति में विद्यमान है। वह है लेन देन का विवाद होने पर पत्नी को त्यागकर दूसरा विवाह कर देने जैसा कलंक। किन्तु वही कान्यकुब्ज ब्राह्मण द्वारा पालित अज्ञात कुल कन्या, त्याग दिए जाने पर डाक्टर बनकर समाज सेवा करती है। यह कथानक हमें पुनः प्रेमचन्द जी के सेवा सदन का स्मरण करा देता है। परित्याग से पुनर्मिलन तक की उपन्यास कथा 'रजनी' और 'सुशील' - नायिका और नायक — के पश्चाताप तथा शुद्ध निर्मल मन की कथा है। शर्माजी ने उक्त उपन्यास पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखकर उस

१. प्रेमचंद - 'प्रेमपथ' - कर्तव्य और वासना का द्वन्द्व - भूमिका

समय के समाज में शिक्षा की सार्थकता से सामाजिक समस्याओं का निराकरण करने की चेष्टा की है।

इस उपन्यास की दिशा दृष्टि की ओर विश्वम्भर नाथ शर्मा जी ने संकेत किया है जो प्रेमचन्द की परम्परा को ही आगे बढ़ाता है।

"रजनी के चरित्र चित्रण में लेखक ने एक नई और बहुत ही अच्छी बात की ओर संकेत किया है। वह यह कि व्यक्त किए जाने पर उसे स्वावलम्बी बना दिया। जो अबलाएँ इस प्रकार अपने पतियों द्वारा छोड़ दी जाएँ, उनके प्रति उनके माता- पिता का यह कर्तव्य है कि वे उन्हें स्वावलम्बी बना दें जिससे कि उनकी दुर्दशा न हो। "१

'उपन्यास लेखक की पहली शर्त है कि जीवन के घनिष्ठ सम्बन्धों की, उन महान तत्वों के उद्घाटन की, जिससे वह अधिक समृद्धिशाली बने, राष्ट्रीय - एकता की दृष्टि से कलात्मकता के गुण सहकारी होकर ही आ सकते है, वस्तु के नियन्ता नहीं' २

वाजपेयी जी १९५१ के उपरान्त समाज के यथार्थ वाद से व्यापक रूप से परिचित हुए। उन्होंने स्वयं लिखा है ' उपन्यास साहित्य की वह अविकल अक्षुण्य विधा है जो जीवन के अधिकाधिक निकट पहुँचकर नव - नव प्राण संचार ही नहीं करती है, उसकी सतत प्रबुद्ध और अक्षरर्थशील बनाती रहती है। इसीलिए जीवन का जैसा सम्पूर्ण उद्घाटन उपन्यास में सम्भव है, वैसा अन्यत्र नही। यह केवल प्रत्यक्ष संवेगों तक ही सीमित रहता है।"

****

१. विश्वम्मर नाथ शर्मा कौशिक - अनाथ पत्नी विषयक निबन्ध (१९२८)
२. डा. त्रिलोकी नारायण दीक्षित - वाजपेयी का शिल्प कौशल

प्रथम अध्याय

उपन्यास - परिभाषा, तत्व और मूलभूत स्थापनायें

उपन्यास शब्द में अस् धातु है - नि उपसर्ग से मिलकर न्यास शब्द बनता है - आप्टे के संस्कृत शब्द कोष में नि + अस् कहकर 'न्यास' शब्द की रचना का संकेत है।[१] न्यास शब्द का अर्थ है धरोहर ।[२] उप + न्यास का अर्थ होगा अधिक समीप की धरोहर जो कि साहित्यिक अर्थ को पूर्ण रूप से परिभाषित नहीं करती। संस्कृत के वैयाकरणों ने न्यास को एक विशेष प्रकार की टीका पद्धति कहा है।[३] पद विशेष के सन्दर्भ क्रम को पद - न्यास और वचन अपने अर्थ को अभिव्यक्त करने को 'वचनोपन्यास' कहा गया है।

उपन्यास को गुजराती में नवल कथा, मराठी में कादम्बरी और अंग्रेजी में नॉवेल कहा गया है उर्दू में भी नॉवल उपन्यास वाचक है। इसी अर्थ में हिन्दी में इसका प्रयोग होता है।

प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रण कहा है। 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव - चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'[४] प्रेमचन्द उपन्यास को आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रचना मानते है। उनका विश्वास है कि 'यथार्थ वाद यदि हमारी आखें खोल देता है, तो आदर्श वाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहां आदर्शवाद में यह गुण है वहां इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों- जिनमें जीवन न हो।[५] प्रेमचन्द का मानना है कि 'उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें। जिस उपन्यास के चरित्र में यह गुण नहीं है वह दो कौड़ी का है।[६]

उपन्यास आज की पारिभाषिक शब्दावली में गद्यशैली का एक प्रकार है। पर वस्तुतः उपन्यास गद्य अथवा पद्य/छन्द के बन्धन से मुक्त एक कथन वृत्ति - वचनोपन्यास' का नाम करण है। उपन्यास वृति में जीवन का जन्म से पूर्व और मरण के उपरान्त का भी आभास मिलता है। प्रेमचन्द का कायाकल्प तीन जन्मों की कथा का विन्यास है। औपन्यासिक रचना में चरित्र का उतार- चढ़ाव का निदर्शन होता है साथ ही मानव मूलवृत्तियों का उद्घाटन भी।

१. नि + अस् = न्यास - आप्टे - संस्कृत शब्द कोश
२. अत्यन्त सुखकर सर्व दुक्षं न्यासस्य रक्षणम् - नीतिवचन
३. 'अनत्सूत्र पदन्यासा सद:वृति: सन्निबन्धना। शब्द विद्यैव नो भाति राजनीतिर पस्पशा, निर्यात: शनकैरलीक वचनोपन्यासमा ली जन: ' अमरुकज्ञतकम् - २३
४. प्रेमचन्द - उपन्यास शीर्षक निबन्ध ।
५. वही
६ वही ।

मानव जीवन के प्रारम्भ से उपन्यास की रचना हुई किन्तु वीसवीं सदी तक आते आते उपन्यास नए नए रचना सन्दर्भों में साहित्यिक संस्कार करता हुआ एक प्रतिष्ठित साहित्यिक विधा बन चुका है। उपन्यास आज के आधुनिक जीवन के जितना सन्निकट है उतनी साहित्य की अन्य कोई भी विधा नहीं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने विशाल भारत में प्रेमचन्द के पत्र छापते यह अनुभव किया होगा कि उपन्यास लेखक पहिले 'साहित्यिक मजदूर' होता था। हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द को जीवन निर्वाह के लिए कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ी है।[१]

वर्तमान जगत में उपन्यास सर्वाधिक प्रचलित साहित्य- विघा है। नोबुल पुरस्कार के अधिकांश विजेता उपन्यासकार ही है।[२] उपन्यास का मानव जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। जीवन की उलझन का यथार्थ चित्रण करना ही उपन्यासकार का उद्देश्य है।[३] आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने भी उपन्यास को सबसे बड़ी साहित्यिक देन माना है।[४] गस्ताव फ्लाविये अपने को पुरूष एवं स्त्रियों की मनोभावनाओं का पारखी समझता था अतएवं उसका उपन्यास 'मदाम वावेरी' विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों की गिनती में आता है। अत: जीवन में चरित्र चित्रण की उपयोगिता की सिद्धि से ही उपन्यास की सफलता है।

'तिलिस्मे होरूशिवा' फारसी का एक वृहत कथानक है जिससे प्रेरणा लेकर बाबू देवकी नन्दन खत्री ने चन्द्रकाता और चन्द्रकान्ता सन्तति की अभूतपर्वू तिलिस्मी रहस्यों को केन्द्र बनाकर उपन्यास रचना की। गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास वृन्दावन लाल वर्मा के इतिहास केन्द्रित, प्रेमचन्द के सामजिक, प्रसाद के समाज सापेक्ष मनोवैज्ञानिक, इलाचन्द जोशी के गर्म और मनोविज्ञान सम्बन्धी, उपेन्दनाथ अश्क से लेकर अज्ञेय के नदी के द्वीप और शेखर: एक जीवनी, जैनेन्द्र के गाँधीवादी, नारी मनोदशा विषयक उपन्यासों के अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा, विश्वम्भर नाथ शर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी से लेकर आज तक के उपन्यासों के विविध आयाम इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि जीवन की जितनी विविधता है उपन्यासों के विषय भी उतने ही विविध है। अमृतलाल नगर का 'मानस का हंस', 'नाच्यो बहुत गोपाल' भले ही तुलसी सूर का स्मरण कराते हों पर है तो सामाजिक ही, नए सन्दर्भो की खोज सदा से मानव मन को रही है।

१. बनारसी दास चतुर्वेदी - विशाल भारत - प्रेमचन्द के पत्र
२. विनोद शंकर व्यास- उपन्यास कला पृ. ८८
३. व्यास- योरूपीय उपन्यास साहित्य पृ. १२५. २६
४. रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इति. पृ. ५३६

रही है । 'तमस' उपन्यास भारत विभाजन की ओर संकेत देता है तो आज के उपन्यास मैला आंचल में क्षेत्रीय आंचलिकता के दर्शन होते हैं । डा. हजारी प्रसाद के चार उपन्यास चार विभिन्न धरातलों पर ठहरते है । 'बाणभट्ट' की 'आत्मकथा' में काल्पनिक कथानक का सहारा है, 'चारु चन्द्रलेख' तंत्राधारित है, तो 'अनामदास का पोथा' वैदिक ऋषि रैक्व की कथा है और पुननर्वा उज्जैन - मथुरा संस्कृति का प्रयोग है । राहुल के उपन्यास सांस्कृतिक धरातल पर लिखे गए हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन के विविध आयामों की वृहत कथा में ही उपन्यास हैं ।

उपर्युक्त से यह तो सिद्ध होता ही है कि उपन्यास जीवन की उपासना है । इसमें हम जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं । उपन्यास चतुर्माप पर जीवन दर्शन है । जीवन में जीवात्मा और परमात्मा ही होते है पर उपन्यास के फलक पर जीवन संघटनाएँ, जीव, ईश्वर और देशकाल की चतुर्माप (Four Dimensions) पर चित्रित की जाती हैं । उपन्यासकार कल्पना के राज्य का सृष्टा होता है । जिस प्रकार उपासना का मार्ग हमें परमात्मा तक पहुंचने का द्वार खोलता है उसी प्रकार उपन्यास हमें जीवन तक पहुंचाता है एवं मानव के स्वरूप - सौन्दर्य का दर्शन कराता है ।उपन्यास काव्यात्मक सत्य का अकाव्यात्मक वक्तव्य होता है, और कथानक भाषा की क्रिया और क्रिया की भाषा है । उपन्यास हमारे समक्ष घटनाओं का अनुवाद प्रस्तुत करता है घटनाओं को नहीं , एवं सत्य के इस अनुवाद के साथ उनकी अनुभूतिओं को भी अर्पित करता है, तथा मानव के अनुभवों की परिधि को बढ़ाता है ।

उपन्यास मानवता का अतिरिक्त वेद है जो जीवन को करणीय है वही उपन्यास में उल्लिखित है । अकरणीय और करणीय दोनों को ही उपन्यास में सँवारा जाता है जिसमें मनुष्य का अतीत और भविष्य सांकेतिक है और वर्तमान उसके पृष्ठों में निहित है ।

एक शब्द में उपन्यास हमारे जीवन का साहित्यिक संस्करण है ।अंग्रेजी में उपन्यास के लिए दो शब्द, प्रचलित है - फिक्शन और नॉवल । फिक्शन का क्षेत्र नॉवल की अपेक्षा अधिक व्यापक है । राल्फ फॉक्स उपन्यास को आधुनिक वुर्जुआ समाज का महाकाव्य मानता है ।[१] उसका विचार शुद्ध व्यवहारवादी है । उपन्यास को वह प्रथक कला के रूप में देखता है जिसने सम्पूर्ण मानव को स्वीकार कर उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है ।अमरीकी लेखक अर्नाल्ड कैटिल ने उपन्यास को गद्य में लिखा गया एक यथार्थवादी, पूर्ण एवं विस्तृत आख्यान माना है ।[२]

1. The novel is an epic art form of our modern bourgouis society. Ralf fox - the Novee and the People page 80.
2. The novel is a realestic prose fiction complete in tself and of a certain length - Arnold kettel - An Introduction to the English novel page 28

डॉ. श्याम सुन्दरदास ने उपन्यास को वास्तविक जीवन की काल्पनिक गाथा कही है जबकि मुंशी प्रेमचन्द ने इसे मानव चरित्र का चित्र मात्र। सभी परिभाषाओ को समाहित करते हुए बाबू गुलाबराय ने उपन्यास के विषय में अपना मन्तव्य प्रकट किया है -

'उपन्यास कार्य कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक व काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।' (काव्य के रुप पृ० १५६)

उपन्यास के तत्व -

१- जीवन का यथार्थ

उपन्यास लेखन की प्रेरणा जीवन के यथार्थ से उद्भूत और अनुभूति के द्वन्द्व से निर्मित बिम्बों से जब शब्दों में चित्रित होने लगती है तब मात्र घटनाएँ ही केन्द्र बिन्दु में नही होती, घटनाओं के कर्ता के रूप में पात्र, उनका चरित्र , और देशकाल वातावरण आदि उसके साक्ष्य के स्वरूप अभिव्यक्ति पाते है। इनमें से एक भी स्थिति के अभाव में जीवन - जगत का यथार्थ और लेखक की अनुभूति का कोई अर्थ नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य जगत के यथार्थ में जीता है उसकी अनुभूति भी करता है किन्तु , वह उपन्यासकार तो नहीं हो पाता। उसमें अनुभूति की तीव्रता , कल्पना का विम्बात्मक सत्य जब घटना के यथार्थ से जुड़ जाता है तो उपन्यास ही लिखा जाएगा अन्य कुछ नहीं।

२- औतसुक्य

औतुसुक्य घटनाओं के निरन्तर गतिमान बने रहने की पहिली अवस्था है। अनुभूतियां भाव या मनोविकारों की सृजक है और महाकाव्य में जिन्हें हम विभाव - क्रोध, रति, घृणा, करूणा आदि ' से जानते है वे सब स्थितियां स्थायी या अस्थाायी रूप में मानव मनोविकारों की ही रूपात्मक सर्जना करती है। इन सभी मनोविकारों के मूल में जिज्ञासा का तत्व प्रबल रहता है जिसे हम औतुसुक्य या कुतुहल कहते हे। कल्पना इसी कुतुहल की संवर्धिनी है। कौतुहल कहानी का प्राण है। यह कुतुहल की वृत्ति कहानी के कथ्य को संयोजित करती है, संगीत की सुर साधना करती हैं और जीवन - जगत के कार्य व्यापारों को आगे बढ़ाती है। उपन्यास में कहानी का संगठन अपेक्षाकृत अधिक सुसंगठित, व्यवस्थित और श्रृंखला बद्ध होता है। ऐसे कथानक में बुद्धि, भावना, कल्पना और बिम्ब रचना के साथ जीवन की प्रतिछाया ही नही रहती वरन् उसकी व्याख्या भी निहित रहती है।[१]

१. साहित्य सन्देश पत्रिका - सं. गुलाबरुय उपन्यास अंक पृ. ४६

३- **मनोरंजन / रसबोध -**

कौतुहल की कथा का परिणाम रसात्मकता है। रसबोध से हम सद्‌वृत्ति से संयुक्त और दुर्वृत्ति से विरक्त होते है - यही मनोरंजन का मूलाधार है। यही सहृदयता काव्य में रस और कहानी में मनोरंजन कहलाती है। हम पात्र और घटनाओं के साथ स्वयं अपने व्यक्तित्व का तादात्मय करने लगते है, फिर पात्र में और पाठक में कोई अन्तर नहीं रहने पाता है। यही मनोरंजन और आत्म विस्मरण की रसमय स्थिति है। तभी पाठक पूरे के पूरे घटनाक्रम और कथानक को स्वयं जीता है।

४- **धनोपार्जन वृत्ति-**

एक सहज प्रश्न है लेखक पाठक की मनोवृत्तियों को अपने काल्पनिक/यथार्थ घटनाक्रम से क्यों उभारता है? अपने अनुभवों को सबका अनुभव बनाना एक लोंक रंजन का ही स्वरूप है जिससे पाठक का मनोरंजन होता है और लेखक को धनोपार्जन जैसे - जैसे कौतुहल वृत्ति बढ़ती जाती है वैसे ही लेखक को धन की ओर प्रवृत्त होने की आकाँक्षा भी बलवती हुए बिना नहीं रहती। एक लेखक की सभी उपन्यास रचनाएँ प्रभावित नहीं करती जब तक कि उनमें वैविध्य न हो और यदि एक ही प्रकार का सपाट विवरण, कथानक, पात्र, किंचित भिन्न - भिन्न परिवेश में यदि प्रस्तुत किए जाएं तो उन सब कृतियों को उसी अभिरूचि के साथ नहीं पढ़ा जाता । भगवती प्रसाद वाजपेयी के कुछ उपन्यास भिन्न - भिन्न नामों से भी प्रकाशित हुए है किन्तु वे अपने परिवर्तित नाम से उतने प्रचलित नही हो सके जिनते कि अपने मूल नाम से प्रचारित थे। आखिर इस नाम - परिवर्तन के मूल में अर्थोपलब्धि ही तो थी। भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास रायल्टी नहीं देते थे। वे तो प्रकाशक को प्रकाशनाधिकार भी दे देते थे ताकि अपनी अर्थ आवश्यकताओं को तत्काल पूर्ण कर सकें। ऐसे न जाने कितने उपन्यासकार है जो अपना स्वाधिकार प्रकाशक को अर्थ आपूर्ति के लिए दे देते है। निराला, राहुल, यशपाल प्रभृति उपन्यासकार भी अर्थ उपार्जन के लिए दिन - रात लिखा करते थे और साहित्य सेवा भी करते रहे। अंग्रेजी साहित्य के उपन्यासकार बाल्टर स्काट और चार्ल्स डिकेन्स ने अर्थ निमित्त उपन्यास लिखकर अपना ऋण शोधन किया और अर्थ विसंगतियों में जीवित रहकर अपना साहित्य - गौरव भी अर्जित किया। क्या सुयोग है कि आज श्रेष्ठ साहित्य कृति पर नोबेल पुरस्कार भी दिया जाता है और अब तक के इतिहास में इस पुरस्कार को प्राप्त करने वाले अधिकांश उपन्यासकार ही रहे। स्टीवेन्सन ने केवल धन अर्जित करने के लिए ही अनेक लेखकों के सुवाक्यों, सन्दर्भों, घटनाओं और लेखन शैली का अनुकरण कर साहित्य में स्थान बनाया।

इन प्रेरणाओं के अतिरिक्त कोई भी वैयक्तिक घटना, रोमांस या चरित्र अथवा सामाजिक समस्या, विसंगति घटना या कि कुछ भी उपन्यास लेखन की प्रेरणा बन सकता है।

तत्वों की समीक्षा :

पं. सीताराम चतुर्वेदी ने उपन्यास के केवल तीन ही तत्व माने हैं। संस्कृत के आचार्यों ने जिस प्रकार नाटक में वस्तु , नेता और रस का विधान किया था ठीक उसी प्रकार उपन्यास में वस्तु - कथानक है, नेता पात्र या चरित्र का विकास है और रस आनन्द तक ले जाने वाली घटनाओं का कार्य व्यापार है।[१]

विलियम हैनरी हडसन ने अपने समीक्षा शास्त्र में उपन्यास के छह तत्व माने है जो बहुधा छात्र समुदाय को अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से लिखे गए है १. वस्तु २. पात्र ३. संवाद ४. देशकाल ५. शैली ६. उद्देश्य।[२] हडसन का मानना है कि घटनाएं कुछ तो परिस्थिति जन्य होती है और कुछ देशकाल में पात्रों द्वारा निर्मित की जाती है। दोनों ही स्थितियों में घटनाओं के सम्मिलित स्वरूप को हडसन 'प्लॉट' / कथावस्तु - कहता है। इन घटित घटनाओं को स्त्री - पुरूष ही (अर्थात पात्र) ही आगे बढ़ाते हैं। इन पात्रों को नाटक में - ड्रामेटिक परसोनी कहा जाता है जो उपन्यास में चरित्र की संज्ञा से अभिव्यक्त है। पात्रों द्वारा कथानक को जो गति प्रदान की जाती है उसका माध्यम संवाद है जिसे कथोपकन भी कहते हैं। कथोपकन का सीधा सम्बन्ध पात्र से ही है जो उसके विचार, कल्पना शक्ति से घात- प्रतिघात की प्रतीति कराते हैं। यही चरित्र चित्रण का स्वरूप भी निर्धारित करता है। समस्त कार्य व्यापार पात्रों द्वारा किसी देश काल की स्थितियों में ही सम्पन्न होते हैं और इस प्रकार के वातावरण सृजन से रसात्मक बोध उत्पन्न करने में सहायता पहुचाते है। 'शैली' एक साधन है चाहे वह वर्णन द्वारा व्यक्त हो या कि घटनाक्रम के उतार चढ़ाव से, चाहे पत्र प्रस्तुति से विकसित हो या कि वर्तमान में मनोभावाभिव्यक्ति से शैली के माध्यम से उपन्यास रोचक या अरोचक होते है। उद्देश्य' वस्तुतः उपन्यास का तत्व न होकर उपन्यास की उपलब्धि है जिसे आनन्द प्राप्ति कहा जा सकता है। इसमें उपन्यास का सन्देश भी मुखर होता है।

आस्टिन वैरेन ने भी उपन्यास के तीन ही तत्व माने है - कथावस्तु (प्लॉट) चरित्र चित्रण और सैटिग इस वर्ग में भी कथावस्तु स्पष्ट है, चरित्र चित्रण का सीधा सम्बन्ध पात्र से है और सैटिंग - नाम से ही स्पष्ट है कि इसका स्वरूप देश- काल जन्य परिस्थितियों से है। सैटिग में एक व्यापकता का आभास होता है जो वातावरण और ध्वनि के रूप में कार्य व्यापार को आगे बढ़ाने में प्रतीक का भी कार्य करता है। हैनरी जैम्स ने भी चरित्र को घटना का संवाहक कहा है।

१. पं. सीताराम चतुर्वेदी - समीक्षशास्त्र पृ. ६७९
२. विलियम हैनरी हडसन - एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर

मुंशी प्रेमचन्द ने उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र कहकर पात्र को प्रधानता दी है। मानव चरित्र में पात्र का जीवन - जगत के प्रति भाव - विचार जिन स्थितियों में अभिव्यक्त होकर चित्र रचना करता हैं वह संघटनाओं द्वारा स्वत: कथानक देशकाल वातावरण शैली में परिवर्तित होते है कहीं पर प्रत्यक्ष और कहीं ध्वनित। मुंशी प्रेमचन्द ने चरित्र को प्रधानता दी है। बाल्टर एलेन भी पात्र को प्रमुखता देते हैं। उसके अनुसार उपन्यासकार पात्रों द्वारा ही उपन्यास के प्रमुख सामाजिक कर्तव्यों का सम्पादन करता है जो पाठकों में सहजानुभूति उत्पन्न करता है। यह पात्र अपने कार्य व्यापार सम्पादन में दोषी - निर्दोषी दोनों ही हो सकता है। इस मन्तव्य के पोषक ग्राहमग्रीन और डी. एच. लारेंस है जिन्होंने पात्र केन्द्रित उपन्यासों की रचना की हैं। 'गोदान' में भी हम 'होरी' के ही प्रसंग में आत्मविस्मृत होते हुए प्रतीत होते हैं।

सुविधा की दृष्टिसे हडसन द्वारा व्याख्यायित उपन्यास के छह तत्वों का विवेचन करना अधिक संगत प्रतीत होता है। तीन अथवा मात्र चरित्र केन्द्रित तत्व की व्याख्या वैज्ञानिक, मनोभवाभिव्यज्जक तथा क्षेत्रीय या कि आंचलिक उपन्यास की व्याख्या में अधिक सहायक नहीं हो पाती है। इस दृष्टि से यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि हड़सन द्वारा उल्लिखित छह तत्व परस्पर ऐसे अविभाज्य रूप से जुड़े है कि एक भी पृथक करने पर शेष का अस्तित्व क्षीण हो जाता है।

कथावस्तु या कथानक -

कथावस्तु के लिए अंग्रेजी का प्लॉट शब्द सर्वग्राहय पारिभाषिक शब्द है। हिन्दी में कथावस्तु का प्रयोग बहु प्रचलित शास्त्रीय परिभाषा के अन्तर्गत आता है। कथावस्तु के तीन मुख्य विभाग हो सकते है - १. अधिकारिक या मुख्य कथावस्तु २. गौण कथा वस्तु और ३. प्रासंगिक कथा वस्तु। 'गोदान' में होरी की कथा वस्तु ही अधिकारिक है, तंखा, खन्ना मिर्जाखुर्शीद आदि की कथाएँ गौण है। जब भी हम कथावस्तु पर विचार करते है तो केन्द्र में पात्र होते है घटनाएँ नहीं क्योंकि पात्र ही उन घटनाओं को भोगते है और रचते हैं। इस दृष्टि से चित्रलेखा, कुल्लीभाट, वाण भट्ट की आत्मकथा, अथवा अंग्रेजी में यूलीसिस, ट्रिश्टम शैण्डी और थ्री मस्केटियर्स जैसे उपन्यास इस वर्ग में आ जाते हैं।

उपन्यास कार्य - कारण सम्बन्धों की तार्किक अन्विति भी है। उपन्यास में कुतूहल का सृजन इन्हीं कारणों और संघटनाओं से होता है। कहानी में कुतुहल सृजन में आगे की घटनाओं के प्रति जिज्ञासा होती है उपन्यास में घटना क्यों हुई इस पर विशेष बल होता है। अत: कहानी जिज्ञासा प्रधान होती है जबकि उपन्यास कार्य -कारण के व्यापार की तर्क जनित आनन्द दायिनी व्याख्या है।

गति और प्रवाह -

उपन्यास की कथा वस्तु गत्यात्मक होना चाहिए। गति से उत्पन्न प्रवाहमानता उपन्यास की अपनी विशेषता है। घटनाओं की प्रवाहात्मकता दूर तक रूचि के बने रहने की स्थिति को स्पष्ट करती है। इसके लिए उपन्यासकार को कल्पनाशील होना चाहिए। उपन्यास की घटनाएं स्मृति प्रधान होती है और उपन्यासकार फ्लैश बैक (Flash back) से उन स्मृतियों को जाग्रत कर उन्हें जीवन्त बना देता है। घटनाओं का जन्म ही स्मृति में होता है और उनका विलय भी स्मृति में ही हो जाता है। इसीलिए स्मृति को घटनाओं का चन्द्रलोक और विस्मृति को घटनाओं का मृत्युलोक कहा जाता है। कभी - कभी विस्मृति से जुड़ी संघटनाएँ उपन्यास का विषय बन जाती है। स्मृति मनोराज्य की विधायिका है और विस्मृति मनोविश्लेषण की। अतः आज के युग में मनोविश्लेषण वादी उपन्यास पढ़े जाने का प्रचलन बढ़ गया है।

यथार्थ का चित्रण -

कथावस्तु यथार्थ का चित्रण है अतः अनुभव जन्य है किन्तु 'मात्र अनुभव ही पर्याप्त नहीं होता। उपन्यास रचना में अनुभव के यथार्थ के साथ कल्पना जन्य वातावरण का भी महत्व है, अन्यथा कथावस्तु की रचना - प्रक्रिया कठिन होगी। कल्पना तत्व से प्रवाहात्मकता को गति मिलती है जो उपन्यास की रोचकता को जीवन्त बनाने में सहायक है। किन्तु उपन्यासकार कोरी कल्पना के सहारे नहीं चल सकता उसे, वस्तु और पात्र के प्रति ईमानदार होना आवश्यक है साथ ही अपने प्रति भी पूरी ईमानदारी से सम्पृक्त हो। तब तक वह स्वयं पात्र के चरित्र को नहीं भोगता जब तक वह न तो यथार्थ सत्य का उद्‌घाटन कर सकता है और न ही अपने अनुभव या कि कल्पना को साकार करने में सक्षम होता है। टॉमस हार्डी के आँचलिक उपन्यास या कि फाणीश्वर नाथ रेणु का मैला आंचल ऐसी प्रवाहात्मक गति, यथार्थ, सत्य, अनुभव और कल्पना के योग से प्रस्तुत उपन्यासो के अनुपम उदाहरण है।

कथावस्तु की तुलनात्मक दृष्टि से डा. वृन्दावन लाल वर्मा का 'गृढकुण्डार' 'विराटा की पद्‌मिनी' और 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई', तथ्यात्मक सत्य, रोमाटिक कल्पना और प्रकृति परिवेश तथा वातावरण को अनुभव के आधार पर चित्रित करने में समर्थ रहे हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों का फलक सर्व देशीय एवं सार्वकालिक है क्योंकि उनमें कथावस्तु का सत्य उद्‌भासित है। अमृत लाल नगर और भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में कथा वस्तु संसलिष्ट है। उनमें मुख्य कथा का पता पात्र के चरित्र चित्रण से ही लगता है अन्यथा कई घटनाएँ एक साथ निर्वाध गति से चलती रहती है।

निरीक्षण दृष्टि -

उपन्यासकार की निरीक्षण दृष्टि बहुत सूक्ष्म होना चाहिए ताकि वह मूल बिन्दुओं को पकड़ में रख सके। निरीक्षण दृष्टि के लिए अध्ययन, चिन्तन और मनन आवश्यक है। श्रवण और अन्त: ग्रहण करने की प्रक्रिया भी अनुभव क्षितिज को बनाकर बढ़ाती रहती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा', राहुल का 'सिंह सेनापति' इसी कोटि की पूर्ति करते हैं। यदि अध्ययन - चिंतन न किया गया होता तो ये उपन्यास क्लासिक न हो पाते। ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए अध्ययन एक आवश्यक शर्त है अन्यथा वातावरण - सृष्टि, पात्र की वेशभूषा, भाषा और देशकाल की स्थितियों का चित्रण मात्र कल्पना के संहारे करना कठिन ही नहीं भ्रामक भी हो सकता है।

उपन्यास विखरे जीवन या खण्ड - खण्ड जीवन - घटनाओं को समेटकर एक सुगठित स्वरूप प्रस्तुत करता है। इन घटनाओं को पात्र कहीं शिष्टता और कही अशिष्टता से प्रस्तुत करते है। शिष्टता और अशिष्टता दोनों ही परिस्थिति - सापेक्ष हैं। वर्तमान युग में 'लेडी चैटरली जलवर' अथवा 'सन्स एण्ड मदर' जैसे उपन्यासों में श्लीलता और अश्लीलता का विवाद निरन्तर चलता रहता है। परम्परा से यह वृत्ति अभिव्यक्त और परिमार्जित होती रहती है। रूढ़ि और सामाजिक परम्परा में पाप और अश्लीलता की सीमाएं निर्धारित करना भी एक शर्त है। एलवर्ट मोराविया के इतालवी उपन्यास अन्यथा सदा अश्लीलता की कोटि में ही रखे जाते। आज के युग मे भी जो उपन्यास रचना हो रही है उसमें यौन - सम्भोग के भी दृश्य है - क्या यह उचित है? एक बड़ा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी के पास नहीं है।

अपराधी जीवन पर आधारित उपन्यास भी घटनाओं की यथार्थता से उपन्यास को नए सन्दर्भों में प्रस्तुत करते हैं। विक्टर ह्यूगो का "ला मिजरेविल्स' ऐसी ही घटना का परिणाम है तथापि ऐसे उपन्यास चरित्र प्रधान ही होते है। जैम्स जोयेस का उपन्यास 'यूलीसिस' तो अन्तश्चेतनावादी है जिसे 'स्ट्रीम ऑफ कान्शसनैस' के अन्तर्गत अध्ययन किया गया है। ऐसे उपन्यासों का हिन्दी में अभाव है तथापि मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'शेखर: एक जीवनी' इसके समीप रक्खा जा सकता है। 'यूलीसिस' में प्रश्नवाचक चिन्हों अथवा कामा, विस्मयबोधक चिन्हों से पन्ने भर देने में उपन्यास का कथानक कुछ भी नहीं तथापि पात्र की मन: स्थिति का उद्घाटन तो होता ही है।वर्तमान में इस प्रकार के स्मृति - विस्मृति आधारित, अपराध बोध या अपराध जगत आधारित, यौन उत्पीड़ित, व्यापार बोध, या किसी भी घटना पर विविध विषयक उपन्यासों की रचना हो रही हैं।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि जीवन - जगत के किसी भी कार्य व्यापार से सम्बन्धित विषय की उपन्यास कृति में ढाल कर कल्पना से सँवारकर उसे रोचकता प्रदान की जा सकती है। कथावस्तु में अधिकारिक कथा के आधार पर उपन्यास अपने स्वरूप को स्थापित करता है। जितना व्यापक घटनाओं का चित्रफलक होगा और पात्र भी जितना सामान्य जन समाज का प्रतिनिधित्व करेगा उतना ही उपन्यास स्थापित हो जाएगा। प्रेमचन्द और हार्डी, डिकेन्स, गोर्की के कथानक इसी कोटि के हैं।

चरित्र - चित्रण :

चरित्र की पृष्ठभूमि में मनुष्यत्व का चित्रण ही प्रमुख है। 'मनुष्यत्व विवश अमरता और स्वच्छन्द पापमयता के स्वरूप को अपने में समेट कर देवत्व को चुनौती देता हुआ ईश्वरत्व का अभिमान है ।" मनुष्य का 'कोमल' स्त्री है, पुरुष के सबल के साथ कोमल का सफल संयोग मनुष्यत्व की चरम सिद्धि है। चरित्र चित्रण इसी सबल - कोमल पुरुष - स्त्री का संयोग है जो उपन्यास में देवत्व और असुरत्व की आवधारणा करता है। समाज में इन वृत्तियों का ही अस्तित्व उपन्यासकार को चरित्र - चित्रण का विस्तृत फलक प्रदान करता है। यही पूर्ण मानवत्व है।

उपन्यास इसी मनुष्यत्व - पूर्ण मानव का जीवन खण्ड है और अपने में पूर्ण भी है। उपन्यास में मनुष्यत्व को बेगार की कैद में रखने का अर्थ है तनाव - कसाव और खुलकर खेलने का अर्थ है स्वच्छन्द उच्छृंखलता। किन्तु, जब मनुष्यत्व केवल फूल की भाँति खिलकर सुगन्ध विकीर्ण करता है तब वह समाज के मानवी मन की प्रतिनिधि सृजनात्मक सृष्टि करता है। उपन्यासकार का यही अभिप्रेत भी है।

उपन्यास में उपन्यासकार भी स्वयं प्रतिस्थापित होता है वह आत्म प्रक्षेपण से भी पात्र - रचना कर उसके चरित्र को उदात्त बना देता है। अपने अन्तर्जगत से कोई भी उपन्यासकार गर्हित चरित्र को जन्म नहीं देता किन्तु, उसकी महत्ता निस्पादित करने के लिए कल्पना से ऐसे पात्र की सृष्टि करता है जो नायक - चरित्र को महत्ता प्रदान कर सके।

उपन्यास मानव - जीवन में प्रवेश करने के तुल्य है। हम मनुष्य को जानने के लिए मनोविज्ञान, नृशास्त्र और आध्यात्म का सहारा लेते हैं। चरित्र विश्लेषण के लिए अच्छे और बुरे दोनों चरित्रों की रचना ही तो मूल्यांकन कराती है। रामायण और महाभारत के राम और अर्जुन की पांवनता के पीछे रावण और दुर्योधन का ही विरोधी चरित्र चित्रण है।

उपन्यास के पात्र जीवन की विविधता को भोगते है - दुर्बल से उदात्त बनते है। भूतनाथ - बीजगुप्त, आम्रपाली चित्रलेखा ऐसे ही पात्र है जो अपनी उदात्तता से ही अविस्मरणीय है। अविस्मरणीय होने के लिए पात्र और घटना का केन्द्रीयभूत सौन्दर्य नवीनता का उत्पादक है। उपन्यासकार एक लेखक है। उसके यशः शरीर पर जरा की छाया नहीं होती। उसके पात्र जीवन्त एवं सौन्दर्य से परिपूर्ण होते हैं। 'वयंरक्षामः' में आचार्य चतुरसेन ने शूर्पनखा का व्यक्तित्व निदर्शन सौन्दर्य की चरम सीमा तक पहुँचाया दिया है। वह काल्पनिक नहीं अपितु वेगम मोहम्मद अली जिन्ना के सत्य और यथार्थ स्वरूप का प्रतिरोपित सौन्दर्य है अतः चरमोत्कर्ष पर है। यही उपन्यासकार की सिद्धि है।

उपन्यासकार पात्रों को कठपुतली की भांति संचालित नहीं करता अपितु उन्हें एक स्वाभाविक गति प्रदान करता है। ये पात्र सजीव है, काल्पनिक नहीं। कोरे काल्पनिक पात्रों के भीतर भी उपन्यासकार जीवन्त रूप में रहता है जिसका प्रेरणा - स्रोत कहीं वास्तविक तो होता ही है।[१] वैसे भी 'पुष्ट - दुष्ट' पात्र भी खलनायक की स्थिति में अमर तो हो ही जाता हैं।

उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व चरित्र चित्रण है। क्योंकि उपन्यास के समस्त कार्य व्यापार मनुष्य द्वारा ही सम्पादित होते है अतः मनुष्य ही तो कोर में रहता है। पाठक यह नहीं देखता है और न ही उपन्यासकार ऐसा मान कर चलता है कि पात्र कौन है। अपितु पात्र के गुणों और उनके आचार व्यवहार से चरित्र चित्रण महत्वपूर्ण थाकि महत्वहीन निर्धारित होता है। सद्‌चरित्र गुण सम्पन्न आचार व्यवहार समन्वित पात्र पर सभी रीझते है। अतः यह कहना संगत है कि लेखक नही पाठक ही चरित्र की उदात्तता का निर्धारण करते है। वह लेखक और पाठक की सम्मिलित सृष्टि होता है।

उपन्यासकार की भाषा और शब्द सम्पदा ही चरित्र के दृष्टि कोण को स्पष्ट करती है और जिससे परिस्थिति भी स्पष्ट होती है। शब्द की बिम्बत्स्मकता वातावरण के सृजन में समर्थ है जिससे पात्र के विकास में पर्याप्त सहायता मिलती है। पात्रों की निर्मित में गुण आचार व्यवहार की स्थिति से पात्र के मनोवैज्ञानिक स्वरूप और घटनाक्रम के साथ उसका तारतम्य की भी संगति होती है। घटना, पात्र और स्वयं उपन्यासकार की मनःस्थिति और सामाजिक मनोविज्ञान चरित्र चित्रण की ही भूमिका है।

१. Robert Liddel - A treatise of novel page - 91
"If a character is wholly fictitious, we can be quite sure it is drawn largefy from other Characters in fiction, themselves in some way first drawn from life."

चरित्राकंन की विधियाँ -

चरित्रांकन की दो विधियाँ बहु प्रचलित है -

(१) विश्लेषणात्मक अथवा प्रत्यक्ष विधि

(२) सांकेतिक अथवा नाटकीय/ परोक्ष विधि ।

विश्लेषणात्मक विधि में पात्रों के चरित्र और सद्‌गुणों को उपन्यासकार स्वयं वर्णित करता है और घटनाएँ उसकी पुष्टि करती है । पाठक इसे प्रत्यक्ष ग्रहण करता है । सांकेतिक विधि में पात्रों द्वारा घटनाओं का सम्पादन होता है और उससे निकला हुआ निष्कर्ष पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को संकेतित करता है । इस प्रकार चरित्र चित्रण के मूल में, किसी भी विधि का अनुसरण किया जाय, होता मनुष्य ही है । उपन्यास लोक में मानव चरित्र और उसके द्वारा सम्पादित सामाजिक व्यवहार प्रमुख है ।

अब हमें यह जान लेना चाहिए कि पाठक और पात्र के मध्य क्या सम्बन्ध है । यदि किसी उपन्यास के पात्र, विशेष रूप से ऐतिहासिक पात्र , उदाहरणत: गुलाम गौस खां , (झांसी की रानी) मूल पात्र तो है नही, मूल पात्र से मिलता जुलता ही होगा किन्तु, न तो पाठक ने उसे देखा है और न ही लेखक ने तथापि उसके प्रतिरूप को पाठक अपनी कल्पना से बिम्बित कर ग्रहण कर लेगा । पात्र संरचना का शेष कार्य उपन्यासकार का है । इतिहासकार कृतियों के आधार पर पात्रों की संरचना करता है, पात्रों के गुण छिपे रहते हैं, उपन्यासकार इन्हीं गुणों को बाहर निकालता है ।

मनुष्य भी दो प्रकार के ही है - जीवन के मनुष्य और कल्पना प्रसूत मनुष्य । कल्पना प्रसूत मनुष्य (Homo fictus) संसार में नही मिलते तथापि उनके क्रिया कलाप से वे स्पष्ट हो सकते हैं किन्तु, जीवन्त पात्र के गुणावगुण अभेद्य है । परिचित व्यक्तियों के गुणावगुण, रूप, आचार, व्यवहार को लेखक अपनी कृति का पात्र बना लेता है, वही पात्र हमें प्रभावी प्रतीत होने लगता क्योंकि जीवन में वह अपने आचरण से ही पहचाना जाता है । उपन्यासकार भले ही उसे पूर्ण रूप से न जान सके तथापि उससे वह अपनी रचना में सतत् जुड़ा रहता है । इस प्रकार लेखक एक ओर अपनी सृजन शक्ति से पात्र रचना करता दूसरी ओर जीवन - चरित्र से उसे स्वाभाविक रूप से विकसित करता रहता है ! यही कारण है कि पाठक ऐसे चरित्र के विषय में मन्तव्य बनाता है कि अमुक पात्र कितना जीवन्त (Life like) है । गुलाब राय भी इसी विभाजन से सहमत होकर गोदान के पात्रों का विवेचन करते है । जहां यह साहब का चरित्र रचनाकार का विश्लेषण करता है वहीं दार्शनिक मेहता का चरित खन्ना की व्यवहार वार्ता से स्पष्ट होता रहता है । एक का सम्प्रेषण सीधा और स्पष्ट है तो दूसरे का विकसित चरित्र है ।

ई० एम० फारेस्टर ने भी पात्रों को सपाट और गतिशील माना है। उनके अनुसार सपाट/स्थिर पात्र एक टाइप का होता है जिसकी प्रवृत्ति विशेष हो जाती है। इस प्रकार के पात्र जब टाइप्ड हो जाते है तो पाठक को उनके जीवन- चरित्र का पूर्वानुमान हो जाता है और रोचकता क्षीण होने लगती है जबकि विकसित चरित्र वाले पात्र जो गतिशील होते हैं उनमें रूचि बनी रहती है।ऐसे विकसित चरित्र को राउण्ड की संज्ञा दी गई है।[२]

पात्रों के चरित्र का विकास भी तीन स्थितियों में होता है - १. चरित्रोद्‌घाटन (एक्सपोजीशन) २. चरित्र वर्णन (डिस्क्रिपशन) और ३. चरित्र - चित्रण (करेक्ट्राइजेशन)। प्रथम पात्र की प्रस्तुति है जिसमें लेखक ही उसे प्रस्तुत करता है। चरित्र वर्णन लेखक के द्वारा उसके प्रत्यक्ष को अभिव्यक्त करता है और चरित्र चित्रण पात्र का स्वयं विकास है। अतः पात्रों के स्वरूप को किसी विभाजक रेखा से नही अपितु उनके स्वाभाविक रुप में जानना अधिक संगत है।

कथोपकथन -

हडसन ने अपनी पुस्तक में कथोपकथन के विषय में लिखा है कि कथोपकथन उपन्यास में सर्वाधिक आनन्द दायक होता है।[३] वार्तालाप में टोन का विशेष महत्व है। टोन, नाद, ध्वनि विकास संवाद का ऐसा संवाहन है जो भावों को स्पष्ट करता है और मन्तव्य का भी सम्प्रेषण करता है जिससे प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। वर्नार्ड वोटों का कथन है कि उपन्यासकार कर शब्दों का श्लेष अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

वह कथन की अपेक्षा पर दिखाने में अधिक विश्वास करता है।[४] कथोपकथन से ही चरित्र का विकास होता है। उपन्यासकार जितने स्थान पर कम से कम वर्णन करे और अधिकांश में वार्तालाप करे उससे पात्र के साथ कथा का भी संवर्धन होता है। नाटक में सम्भाषण का प्रमुख - उद्देश्य कथानक को विकसित करना होता है जबकि उपन्यास में सम्भाषण चरित्र - चित्रण को विकसित करता है। वार्तालाप से संवेदनाओं की अभिव्यक्ति भी होती है। विचार करना और विचार को कार्यरूप में परिणित करना भी वार्तालाप का ही क्षेत्र है। जहाँ कथन और क्रिया में एक रूपता रहती है वहां चरित्र का उद्‌घाटन और चित्रण होकर पात्र की उदात्तता प्रकट होती है। किन्तु, लेखक को अपने स्वयं के विचार और सिद्धान्तों को पात्र के ऊपर थोपकर वर्णन करना संगत नहीं है - उससे लेखक को बचना चाहिए। समस्या मूलक उपन्यासों में विचाराभिव्यक्ति के लिए, यहाँ तक कि लम्बे सम्भाषणों के लिए, लेखक पात्र द्वारा सम्पादित करने के लिये पर्याप्त स्थान खोज लेता है। वस्तुतः

१. एडविन म्योर - दी स्ट्रक्चर ऑफ नावल १४१
2. W. H. Hudson - An Introduction to English lilsature - P. 202.
3. Bernard voto - The world of Fiction P. - 250.

जीवन का सौन्दर्य ही उसकी स्वाभाविकता है। स्वाभाविकता से सम्भाषण भी सरल और सारगर्भित होते हैं जिससे सौन्दर्य बोध बढ़ जाता है।१

अच्छे सम्भाषण हिन्दी उपन्यासों में अज्ञेय और अमृतलाल नागर के उपन्यासों में दर्शनीय है।२ सही मन्तव्य यही है कि हम वास्तविकता और नाटकीयता का मिश्रण कर उपन्यास के कथानक में नाटकीयता का गुण रोचकता के बढ़ाने में सहायक बनायें। भाषा की आवश्यकता पात्रानुसार करने से स्वाभाविकता और रोचकता दोनों ही बनी रहती है। मैला आँचल और प्रेमचन्द्र के उपन्यास इस स्तर पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

वातावरण एवं देशकाल -

कथानक के तीन अंगों में तीसरा अंग 'सेटिंग' है। 'सेटिंग' का अर्थ उन स्थितियों, वातावरण और देशकाल की सीमाओं से है जहां घटना घटित हो रही है, जहां पात्र संघर्षरत है और जहां कार्य-व्यवहार सम्पादित हो रहा है।' सेटिंग' निर्मित - वातावरण है जिसमें सद् और असद् दोनों ही प्रकार की घटनाएं और पात्र जीवित है। पारिभाषिक तौर पर, फ्राँसीसी भाषा में जिसे 'मीलू' कहते हैं, वही वातावरण है जिसमें जन समुदाय की अपेक्षाएँ, आकांक्षाएँ रीति- रिवाज, रहस्य, जीवन पद्धतियां, प्रचलन, भाषा, रंगढंग सभी सम्मिलित है। परिस्थितियाँ और पात्र के संयोजन किसी वातावरण में ही जन्म लेते हैं जिनकी बिम्बात्मकता पाठक को कल्पना शक्ति से सृजन और पाठन में सहायक होती है।

वातावरण में चित्रात्मकता का विशेष स्थान है जिसे कल्पना बिम्ब द्वारा तैयार किया जाता है। पाठक जितना संवेदनशील होता है उतनी ये निर्मितियां स्पष्ट होती है। सामाजिकता का यथार्थवादी दृष्टिकोण और पात्रों के मनोविज्ञान से निर्मित वातावरण का बिम्ब - सौन्दर्य प्रभावशाली होता है। इसके साथ ही स्थानीय रंग (Local Touch) का भी विशेष महत्व है - 'मीलू' की यही विशेषता है।

१. प्रेमचन्द - कुछ विचार - ५५
२. अज्ञेय - नदी के द्वीप, नागर - बूंद और समुद्र

उपन्यास की मूलभूत स्थापनाएँ -

प्रत्येक उपन्यासकार की अपनी एक दृष्टि होती है उसकी मान्यतायें भी संस्कार की बात है तथापि सामाजिक प्रभाव और वातावरण से अर्जित यथार्थ के बीच में वह अपनी विचारोत्पन्न भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर नए आदर्श की सृष्टि करने लगता है जिसमें उसका मूलभाव निहित रहता है। मात्र यथार्थ का चित्रण उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं होना चाहिए वह दिशा निर्देशक भी है।

उपन्यास लेखन एक कला है। अत्यन्त कुशल उपन्यासकार भी इस कलाकृति में जीवन की अनुभूति ही करता है। कथानक के रेखाचित्र में जीवन को बांधना ही उसकी कला कुशलता है। जीवन एक सतत प्रवाहमगन सरिता है अतः ये रेखाएँ सिमिटिती - बढ़ती रहती है, धूमिल - चंमकीली भी होती रहती है- इन्ही से जीवन - प्रयोजन भी रसमय होता है। अतः उपन्यासकार का क्षेत्र और शिल्प दोनों ही व्यापक होते हैं। हमें कथानक का रूप स्थापित करना पड़ता है, एक आकृति हमें बनाना पड़ती है। हम मात्र कहानी कहकर उपन्यास को न तो रोचक बनाते है और न ही उपादेय। उपन्यास को जीवन्त बनाने के लिए रूप वैशिष्ट्य होना आवश्यक है। यह स्पष्टतः स्वीकार्य होना चाहिए कि लेखक और जीवन की घटनाओं में सामन्जस्य हो जिसमें रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त रहने की क्षमता निहित है।[१]

'आवश्यक यह है कि पाठक कहानी में आते ही जो कुछ उसमें लिखा है उस पर विश्वास करने लगे।' इस तथ्य को साहित्य समीक्षक भी स्वीकार करते है। ई० एम० फारेस्टर इसे केन्द्रीय बिन्दु मानते है जबकि ल्यूबाक ने 'क्राफ्ट ऑफ फिक्शन' में इसे परिधि पर माना है किन्तु, दोनों ही उपन्यास समीक्षक इसे अस्वीकार नहीं करते कि पाठक और कथा - पात्र में एकरूपता होना चाहिए।[२] प्रत्येक अच्छा उपन्यास अपनी विषय वस्तु के संयोजन और शिल्प, कथ्य, शैली, व्यवस्था, उपमा, सादृश्य और विरोध, आश्चर्य और कथानक की विविधता , मानवीकरण और ऐसे ही सहस्त्रादिक विषय की ओर इंगित करता है जिसे अच्छा समालोचक भी उसकी गुणवत्ता पर और अच्छे शिल्प पर कसौटी पर परखता है।[३] उपन्यास विविध धरातलों पर अपना कथानक - प्रस्तुत करता है किन्तु समालोचक अपने निश्चित मानदण्डों पर उसे परखता है - ल्यूवॉक उसे कला की विविधताओं में ही देखने का हामी है।

१. क्राफ्ट ऑफ फिक्शन
२. स्कॉट जेम्स - Making of Literature. P. 369-70
३. वही पृ. ३७१

इसी सन्दर्भ में स्कॉट जेम्स ने उपन्यास लेखकों के लिए भी चार नियम निर्धारित किए हैं जो अधिक संगत प्रतीत होते है-

(१) उपन्यासकार को उस विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिस पर वह गहन गम्भीर चिन्तन कर अपने उपन्यास के कथानक में गुम्फित कर सके। विचार की यह दृष्टि घटनाओं और समस्याओं का विश्लेषण कर उन्हें यथार्थ में प्रस्तुत कर दिशा निर्देश कर सके।

(२) उपन्यासकार निरन्तर अध्ययनरत रहे ताकि अपने अध्ययन से अपने कथानक के साथ पूर्ण न्याय कर सके । कथानक समाज से विकसित होते है अतः समाज की ऐतिहासिक दृष्टि भी उपन्यासकार के लिए आवश्यक है।

(३) मानव- स्वभाव और चरित्र के रहस्यों का गूढ़ अध्ययन उपन्यासकार के ज्ञान को निरन्तर विकसित करता रहे क्योंकि अन्ततः उपन्यासकार मानव चरित्र का ही तो चित्रण करता है। यह अध्ययन सार्वभौमिक सीमाओं तक विस्तृत होना चाहिए जिसमें विभिन्न प्रकार के मानव चरित्रों के अध्ययन करने का अवकाश है।

(४) उपन्यासकार में सहजानुभूति की संवेदनाओं का भण्डार होना चाहिए। यदि वह अपने पाठकों को करूणा की संवेदना से रोता देखना चाहता है तो स्वयं भी रचना करते समय आंसू बहाए।[१]

अन्त में जीवन की निकटता को चित्रित किरने में जितनी शक्ति होती है उतने ही उसमें खतरे भी हैं। मन, बुद्धि और मानव - चरित्र अन्योन्याश्रित है। इनके समन्वय से ही यह जीवन सदृश नही बनता अपितु जीवन के सत्य को उद्भासित करता है।

१. स्कॉट जेम्स - Making of lelsalure P. 371 - 72

****

द्वितीय अध्याय

भगवती प्रसाद. वाजपेयी के उपन्यासों का सामान्य परिचय, उपन्यासों का वर्गीकरण , -

(अ) प्रारम्भिक उपन्यास, आदर्श - यथार्थवादी उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, सामाजिक - सांस्कृतिक उपन्यास, परम्परागत उपन्यासों से भिन्नता ।)

(ब) भगवती प्रसाद वाजपेयी के प्रमुख उपन्यासों का साहित्यिक अनुशीलन: । प्रेमपथ, दूखन लागे नैन, सूनी राह, गुप्तधन, पतिता की साधना, पिपासा, निमंत्रण, विश्वास का बल, अधिकार का प्रश्न (उनसे न कहना)

"श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के कथाकारों में हैं और प्रेमचन्दोतर हिन्दी - कथा-साहित्य में उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। वाजपेयी जी ने अपने कथानक और चरित्र की प्रेरणा समाज से ग्रहण की है और उनकी रचनाओं में सामाजिकता का ऐसा गुण है जो हमें उनकी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता। निश्चित ही वे गाँधावादी - युग से प्रभावित हुए हैं और इसीलिए उनकी कृतियाँ एक ऐसी आदर्शवादी भूमि पर प्रतिष्ठित हैं जिन्हें भारतीय संस्कृति केजीवन्त-तत्वों से सम्बद्ध करके सहजही देखसकते हैं। इसी आदर्शवादी आग्रह के धारण अपनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि के होते हुए भी वे नग्न यथार्थ में रूचि नहीं लेते और सम्भवत: आधुनिकता की दौंड़ में दूर तक साथ नहीं दे पाते। किन्तु वाजपेयी जी का सृजन जिन उच्चतर मानव मूल्यों पर आधारित है, उन्हें हम साहित्य के स्थायी प्रतिमानों के रूप में स्वीकार करते आए हैं और यही उनके कथा - शिल्प की विशिष्ठ उपलब्धि है।'

डा. आत्मानन्द मिश्र, सागर विश्वविद्यालय।

उपर्युक्त कथन वाजपेयी जी के उपन्यास साहित्य की सर्जना के आयाम निर्धारित करता है। उनके उपन्यास प्रेम - कर्त्तव्य - वासना की त्रयी को पार कर मानववादी स्वरों से संयोजित संचालित है।और यथार्थ के मार्ग पर चलकर आदर्श गन्तव्यों पर पहुंचते हैं। उनके उपन्यास मनोवैज्ञानिक स्तर पर मानव - जगत के रहस्यों का उद्घाटन करते है। वाजपेयी जी के उपन्यास सामाजिक धरातल पर प्रेमचन्द परम्परा को यथार्थ से आदर्श की ओर ले जाते है।

वाजपेयी जी ने १९२६ से उपन्यास लेखन प्रारम्भ किया और लगभग ४५ उपन्यासों की रचना उन्होंने की है। उनके प्रारम्भिक उपन्यास प्रेम - वासना - कर्तव्य और नारी जीवन से आन्दोलित हैं; शनै - शनै विकास क्रम में सामाजिक, यथार्थ - आदर्श और मनोविज्ञान, गांधी दर्शन, से प्रभावित उपन्यासों की रचना की गई। प्रेम विषयक उपन्यासों की संख्या १५, सामाजिक उपन्यासों की १०, गाँधी दर्शन विषयक ४ यथार्थवादी व आदर्शवादी ३ और मनोविज्ञान परक दार्शनिक उपन्यासों की संख्या ५ हैं जिनका सामान्य विवरण उनके औपन्यासिक विकास को समझने में सहायक होगा।

भगवती प्रसाद वाजपेयी की उपन्यास यात्रा प्रेमपथ (१९२६) से प्रारम्भ होती है। इस उपन्यास की भूमिका को मुंशी प्रेमचन्द ने लिखकर उन्हें आशीर्वाद दिया था। उपन्यास का नायक रमेश का अपनी विधवा साली से प्रेम करने का चित्रण करते हुए वाजपेयी जी ने अनेक समस्याओं को उठाया है। स्त्रियों में भाग्य की वद्धमूल धारणा, रूढ़िवादिता और सामाजिक विडम्बना को उठाकर लेखक की मान्यता है कि स्त्रियां हरके बात में समझ लेती है कि हमारे भाग्य में लिखा है । मां - बाप के हाथों से विवाह होने की ऐसी परिपाटी चली आती है कि वे चाहे जितना अनुचित, करने के लिए प्रस्तुत हों, लड़कियां बेचारी कुछ नहीं कह सकती।'

प्रेम का त्रिकोण उपस्थित करता है वाजपेयी जी का १९२९ में प्रकाशित 'मुस्कान' शीर्षक उपन्यास।१९३२ में यही उपन्यास एक अन्य नाम 'त्यागमयी' से प्रकाशित हुआ। नाटकीय ढंग से लिखा गया यह उपन्यास ललिता का अपने प्राण रक्षक विजय से प्रेम करने का स्वरूप है किन्तु, विजय एलिस नाम की युवती से प्रेम करता है जिसे किसी अपराध में प्राण दण्ड मिलता है किन्तु इस प्राण दण्ड के अपराध को ललिता स्वीकार कर मृत्यु का वरण करती है। भावुक कल्पना को त्याग में परिणित कर उपन्यासकार ने एक उदात्त भाव को स्पष्ट किया है।

इसी प्रकार ललिमा (१९३४) में प्रेम की निस्वार्थता के लिए आत्म बलिदान, प्रेम निर्वाह (१९३४), जो 'निर्यातन' शीर्षक से १९५५ में भी प्रकाशित किया गया, उपन्यास में राधिकाकान्त -मल्लिका के प्रेम की राजद्रोह में परिणिति आदि नाटकीय ढंग से वर्णित हैं। पिपासा (१९३६-३७) विवाहिता स्त्री के पर पुरूष के प्रति प्रेम आकर्षण की कथा है। नरेन्द्र की पत्नी शकुन्तला कमलनयन के प्रेम के प्रति समर्पण की प्रेम - कर्त्तव्य द्वन्द्व की कथा है। लेखक का मत है "नारी के लिए पर पुरूष अपदार्थ है। वह उसके लिए अस्तित्व हीन है। —— अब पर पुरूष से दूर रहना तो दूर की बात है, उसमें मिलना होगा, उसमें लिप्त होना पड़ेगा और जीवन संघर्ष से भिड़ना होगा। यहां तक कि आवश्यकतानुसार उन्हें मित्र या शत्रु भी बनाना होगा।"[१] 'दो बहिनें' १९४० में प्रकाशित हुआ। लता और आशा दोनों बहिनें ज्ञान प्रकाश के प्रति आकर्षित है। आशा की मृत्यु से नाटकीय पटाक्षेप होना उपन्यास की नियति है। इसी प्रकार चलते - चलते (१९५१) रात और प्रभात (१९५९) दरार और धुवां (१९६०) चन्दन और पानी (१९६२) में प्रेम के विभिन्न स्वरूप प्रकट किए गए हैं।

१. पिपासा ।

सामाजिक उपन्यासों में वाजपेयी ने मीठी चुटकी (१९२७) में नारी की सामाजिक स्थिति, अनाथ पत्नी (१९२८) में ब्राहमण समाज में व्याप्त कुरीतियों का चित्रण किया है। पतिता की साधना (१९३६) की नन्दा अपने पिता की और पति की मृत्यु के बाद हर नाम के प्रति आकर्षित होकर लोक सज्जा के वश नदी में कूद कर आत्म हत्या का प्रयास करती है। मनुष्य और देवता (१९५४) में मानवीय और दानवीय वृत्तियों का वर्णन है। अनामिका, स्वर्णलता, सुधीर जगमोहन आदि पात्र सन्तोष और कर्म की महत्ता प्रकाशित करते है। लेखक का मत है कि' प्रत्येक देवता में मानवात्मा का निवास रहता है और प्रत्येक मनुष्य में कही न कही देवता छिपा रहता है।'[१] १९५५ में तीन उपन्यास प्रकाशित हुए- धरती की सांस, भूदान और यथार्थ से आगे । ये तीनों उपन्यास भिन्न - भिन्न विषय भूमि पर लिखे गए है धरती की सांस सामाजिक है, भू - दान गांधी - विनोबावादी और यथार्थ से आगे मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों को पारिवारिक भूमि पर सुलझाता है। एक प्रश्न (१९५६) आदर्शवाद की कृति है। इसी वर्ष सूनीराह' और 'विश्वास का बल ' भी प्रकाशित हुए जिनमें मनुष्य के चरित्र निर्माण का उत्कर्ष दिखाया गया है। १९५७ में उनसे न कहना तथा रात और प्रभात का सृजन हुआ जिनमें आधुनिक नारी जीवन का चिन्तन किया गया है जिसमें मनोवैज्ञानिक कुष्ठाएँ व्याप्त है। पाषाण की लोच (१९५९) और दरार और धुवां (१९६०) में प्रकाशित हुए जिनका विषय भी प्रेम - कर्तव्य की ग्रंथि सुलझाना था।

सपना विक गया (१९६०) टूटा टी सेट (१९६२) जीवन परक और फिल्मी जीवन को विवृत करने वाली कथाएँ है जो आत्मपरक या जीवन की अन्तरंग समस्याओं को उदभासित करती है। चन्दन और पानी भी १९६२ की रचना है, १९६३ में टूटते बन्धन प्रकाशित हुआ जिनमें आधुनिक जीवन और आवश्यकताओं का चिन्तन है। दूखन लागे नैन (१९६२) कपट निद्रा (१९६३) राजपथ नाम से पतवार (१९५२) का पुनः प्रकाशन १९६४ में हुआ।राजपथ उपन्यास कानपुर विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में भी बी. ए कक्षाओं में निर्धारित किया गया जिसमें गांधी वादी विचार धारा और अहिंसा का प्रतिपादन है। अधिकार का प्रश्न (१९६५), मुझे मालूम न था (१९६६) एक स्वर आंसू का तथा छोटे साहब और विजय श्री तीनों उपन्यास १९६६ में प्रकाश में आए। नदी और नाव नाम से (१९६६) में पुनः धरती की सांस (१९५४) का प्रकाशन किया गया। १९६७ में अधूरा स्वर्ग, कर्मपथ और वासना से परे का प्रकाशन हुआ जिनमें प्रेम - वासना, भावुकता और कर्तव्य का चित्रण करती ही करती है।

१. मनुष्य और देवता - भ. प्र. वाजपेयी।

इस प्रकार यह सहज निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वाजपेयी जी के उपन्यासों का प्रमुख वर्ण्य विषय प्रेम - वासना - कर्तव्य का त्रिकोण है जो भावना और विचार के संघर्ष में पलता है। उनके उपन्यास चाहे प्रेम सम्बन्धी हों या सामाजिक, मनोवैज्ञानिक हो या यथार्थ वादी, वे सभी कहीं न कहीं प्रेम - नारी- वासना को अवश्य ही युगीन परिस्थितियों में सुलझाते- उलझाते रहते हैं किन्तु, उनका परिसीमन मानवता वादी आदर्श में ही होता है।वाजपेयी जी ने प्राचीन रूढ़ियों और आधुनिक प्रगतिशील विचारों के संघर्ष को भी उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है इनके अतिरिक्त मनुष्य की तृष्णा, आकांक्षा, ईष्या आदि वृतियां अनेक प्रकार के एँकागी स्वर्ग से युक्त नियमों का सृजन करती है। आदर्श और अतृप्ति भी उसे ध्वंसोन्मुख सामाजिक चेतना की पृष्ठभूमि में विभिन्न परिणितियों तक ले जाती है।[१]

वाजपेयी जी निरन्तर लिखते रहे है। एक - एक वर्ष में दो - दो तीन - तीन उपन्यासों का प्रकाशन इस बात का द्योतक है।

१९२८ - मीठी चुटकी और अनाथ पत्नी

१९३४ - प्रेम निर्वाह और लालिमा

१९३६ - पतिता की साधना पिपासा

१९५० - निमंत्रण और गुप्तधन

१९५४ - धरती की सांस और मनुष्य और देवता

१९५५ - भूदान, यथार्थ से आगे और निर्यातन

१९५६ - विश्वास का बल और सूनीराह

१९५७ - निरन्तर और एकदा

१९५९ - गोमती तट पर और रात और प्रभात

१९६० - उनसे न कहना, दरार और धुवां तथा सपना बिक गया

१९६२ - टूटा टी सैट, दूखन लागे नैन और चन्दन और पानी

१९६३ - टूटते बन्धन और कपट निद्रा

१९६५ - अधिकार का प्रश्न और स्वप्नों की गोद

१९६६ - मुझे मालूम न था, एक स्वर आंसू का, छोटे साहब, विजय श्री और नदी और नाव

१९६७ - अधूरा स्वर्ग, कर्मपथ और वासना से परे।

वाजपेयी जी ने कम से कम पांच उपन्यासों को शीर्षक बदल कर कुछ वर्षों के अन्तराल से पुनः प्रकाशित कराया है जिसका मुख्य कारण लेखक की आर्थिक दुरावस्था तो थी ही कथानक को भी पाठकों ने सराहा होगा। लोकप्रियता का ऐसा उदाहरण कम देखने को मिलता है जब एक ही लेखक की कृति परिवर्तित नाम से उसी के जीवन काल में प्रकाशित हो। वाजपेयी जी ने किसी भी उपन्यास को रायल्टी के आधार पर प्रकाशित नही किया अपितु प्रकाशन के अधिकार - प्रकाशक को बेच दिए। इससे यह स्पष्ट होता है कि लेखक आर्थिक स्थितियों से निरन्तर जूझता रहा है। ये उपन्यास निम्नवत है -

	मूल उपन्यास		**परिवर्तित नाम**
१९३४	प्रेम निर्वाह	१९५५	निर्यातन
१९५०	गुप्तधन	१९५७	एकदा
१९५२	पतवार	१९६४	राजपथ
१९५४	धरती की सांस	१९६६	नदी और नॉव
१९६३	टूटते बन्धन	———	अभिसंधि

इसके अतिरिक्त डॉ. प्रतापनारायण टण्डन ने १९५९ में प्रकाशित 'पाषाण की लोच' उपन्यास का उल्लेख किया है जो उप्राप्य है। इससे प्रतीत होता है कि लेखक अपनी आर्थिक दुरावस्था और फिल्म जगत के अनुभवों की मानसिकता से ग्रस्त था और दूसरी ओर वह अपने आदर्शों से परिस्थिति जन्य यथार्थ का समझौता नहीं कर सकता था।

उपन्यासों का वर्गीकरण - भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों को मोटे तौर पर चार विभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। उनके प्रारंम्भिक उपन्यास प्रेम विवाह, वासना, कर्त्तव्य आदि विभिन्न सन्दर्भो में लिखे गए है जिन्हें प्रेम - प्रधान उपन्यास की कोटि में रक्खा जा सकता है। दूसरी कोटि के उपन्यास यथार्थवादी उपन्यास है जिनकी कथा भूमि समाज में प्रचलित कुप्रथाओं और कुरीतियों के यथार्थ से सम्बन्धित है। समाज का यथार्थ जीवन सत्यों को उद्घाटित करता है और जीवन - मूल्यों की ओर अग्रसर होता है यही उसकी आदर्श स्थिति है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास प्रेमचन्द की परम्परा का निर्वाह करते हैं। तीसरी प्रकार के उपन्यास मनोवैज्ञानिक स्थितियों को प्रतीत द्वारा अभिव्यक्त करते हैं। इनमे मानवमन की विभिन्न भावभूमियों का चित्रण किया गया है। चौथी प्रकार के उपन्यास वे हैं जिनमें सामाजिक मूल्यों के साथ मानवमूल्यों, परम्पराओं, गांधीवादी आदर्शों, सत्य,

प्रेम अहिंसा जैसी पवित्र भावनाओं का चित्रण है। अतएव इन्ही चार वर्गों में इनका अध्ययन अभीष्ट है-

१. प्रारंभिक अथवा प्रेम - प्रधान उपन्यास

२. आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास

३. मनोविज्ञान अथवा प्रतीक अभिव्यक्ति के उपन्यास

४. समाज संस्कृति अथवा मानववादी उपन्यास.

प्रारम्भिक उपन्यास : उपन्यास लेखन के पूर्व भगवती प्रसाद वाजपेयी कहानी - साहित्य या कि कविता - रचना धर्मिता से संयुक्त थे। उनकी कहानियों का सृजन १९१७ से ही हो गया था किन्तु नौ वर्ष उपरान्त अर्थात १९२६ से उन्होंने प्रेमपथ से अपनी उपन्यास यात्रा प्रारम्भ की।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के आरम्भिक उपन्यासों में निम्नलिखित उपन्यासों की गणना की जा सकती है जो मूल रूप से प्रेम की अभिव्यक्ति करते है-

१. प्रेमपथ - १९२६

२. मीठी चुटकी - १९२८ इस उपन्यास को तीन लेखकों ने मिलकर लिखा है। पहला भाग - भगवती प्रसाद वाजपेयी कृत, मध्य भाग - विजय वर्मा कृत, और अन्तभाग - शम्भू दयाल सक्सेना कृत है।

३. अनाथ पत्नी - १९२९

४. त्यागमयी १९३०

५. लालिमा १९३५

६. प्रेम निर्वाह १९३६

७. पतिता की साधना १९३७

८. पिपासा १९३७

१. प्रेमपथ- के विषय में भूमिका लिखते समय प्रेमचन्द जी ने अपना मन्तव्य दिया है -" स्त्री पुरुष में प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अन्त विवाह न हो, केवल वासना हो, वह कलुषित है। इसकी निन्दा है व होनी चाहिए अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जाएगी। तारा और रमेश का प्रेम कलुषित है, लेकिन आश्चर्य है कि यह इतने दिनों तक उसे निर्मल और निष्कलंक

समझती रही। यदि विधवा साली का अपने जवान बहनोई के साथ एकान्त में रातभर बातें करना, चुम्बन और आलिंगन करने से भी न हिचकना पवित्र प्रेम है तो फिर संसार में अपवित्र प्रेम कहीं है ही नहीं।'[१]

यह सत्य है कि तारा जीवन के उभार में ही विघता हुई है, किन्तु, क्या यह उचित भी है कि उसका बहनोई रमेश ससुराल में जाकर बतियाता रहे, वही का होकर रह जाय। ससुराल में उसका साला प्रताप नारायण है, उसकी पत्नी है, उसकी मां है किन्तु, वे सभी रमेश के निरन्तर बने रहने तथा तारा के सम्बन्धों को जानते हुए भी मूक दर्शक है। मां भी चतुर्दिक होने वाली बदनामी को जानती हुई भी शान्त है। यह प्रतिक्रिया - जो होनी चाहिए थी पर नहीं हुई- से शूण्य सामाजिक अस्वाभाविकता को जन्म देती है।

२. **मीठी चुटकी : -** शिक्षित नारी की सामाजिक विद्रूयता के सम्बन्ध में लिखा गया यह उपन्यास मीठी चुटकी है। 'सार्वजनिक क्षेत्र में अकेली नारी का जीवन कितना भयावह है और निन्दा, व्यंग्य से उसकी अवस्था कितनी असहाय हो जाती है। सत्तर वर्ष वाद आज भी यह उपन्यास प्रासंगिक है। प्रतिदिन महानगरीय जीवन में ऐसे उदाहरण मिल जाएँगे जहां काम -काजी महिलाएँ अपनी मर्यादा के लिए जूझती प्रतीत होती है।

३. अनाथ पत्नी :- मीठी चुटकी के आगे की कथा 'अनाथ पत्नी' में वर्णित है जिसमें कन्यकुब्ज ब्राहमणों में प्रचलित दहेज जैसी कुप्रथा के कारण पत्नी का परित्याग कर लड़के का दूसरा विवाह कर देना एक सरल सामाजिक व्यवहार (दुर्व्यवहार) बन गया है- शायद वाजपेयी जी का यह भोगा गया सत्य हों। रजनी के प्रति भी यहीं व्यवहार हुआ है जिसके माध्यम से लेखक परित्यक्ता की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहता है। उपन्यास में एक दिशा निर्देश भी है। ऐसी अबला परित्यात्त नारी भी अपने अध्यवसाय से स्वावलम्बी बन सकती है। रजनी चिकित्सक बन जाती है ताकि वह अपना जीवन दीनों की सेवा में बिता सके। सुखान्त अंत वाजपेयी जी की आशावादिता है प्रेमचन्द युग की यही एक बड़ी देन है। विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' स्वयं समकालीन उपन्यासकार है उनका भी यही अभिमत है। कतिपय दुर्बलताओं के साथ वाजपेयी जी का प्रवेश प्रौढ़ कृतियों की ओर इसी पहली पीढ़ी पर चलकर मिलता है।

४. 'त्यागमयी' उपन्यास प्रेमिका द्वारा प्रेमी के लिए होम होना है। इस उपन्यास में कथानक पर सोद्देश्य एक पकड़ है।

१. प्रेमपथ :- भूमिका भाग

५-६. 'लालिमा' ओर 'प्रेम प्रवाह' दो ऐसे उपन्यास हैं जिनमें प्रेम के सात्विक रूप का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'लालिमा' का आधा भाग वाजपेयी जी का लिखा है और उत्तरार्द्ध प्रफुल्ल कुमार ओझा 'मुक्त' का लिखा हुआ है। किन्तु, 'प्रेम प्रवाह' में कर्त्तव्य निष्ठा अनुराग और सदाशयता का उच्च स्तरीय निर्वाह है। दोनों उपन्यासों में जिस निष्ठा, लगन, और व्रत - संकल्प है वह भाव है प्रेम।

७-८. 'पतिता की साधना' और पिपासा ' में पत्नी - प्रेमिका - प्रेमी का त्रिकोण है। नरेन्द्र जज की पत्नी शकुन्तला कमलनयन कवि से प्रेम करती है जो स्वयं निर्धन और बेरोजगार है। पतिता की साधना यथार्थ और आदर्श की मिली - जुली अभिव्यक्ति है। 'नन्दा' पतिता है किन्तु इस जगत के कुरूप यथार्थ का सामना वह अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से निरन्तर करती रहती है, यही उसका आदर्श है जो प्रेमचन्द का अवदान है।१

आगे के उपन्यास प्रेमचन्द के उत्तर युग के है। १९३६ में प्रेमचन्द जी का निधन हो गया। जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' तितली और इसवती (अपूर्ण) मनोवैज्ञानिक एवं अन्तःपक्ष के उपन्यास है। वाजपेयी जी पर इन दोनों का प्रभाव पड़ना स्वाभविक था। अतः उनके सभी उत्तर उपन्यास दो बहिनें' से लेकर वासना से परे तक सभी आदर्श - यथार्थ - मन चेतना विषयों के सम्मिश्रित रूप है। गुप्तधन, मनुष्य और देवता, टूटा टी सेट, भूदान आदि उपन्यासों की चर्चा हम विस्तार से आगे करेंगे। सामाजिक और सांस्कृतिक उपन्यास को पूर्ण रूप से समाज सम्पृक्त बनाते हुए वाजपेयी जी ने 'छोटे साहब' लिखा है 'विश्वास का बल' उपन्यास में प्रेम, परिवार और कर्तव्य की अभिव्यञ्जुना है। इस उपन्यास की रचना १९५६ में हुई थी तथापि लेखक का अभिमत है -

> "इस उपन्यास का मूल संकेत मनुष्य के
> चरित्र निर्माण में उसकी किसी मानवीय
> दुर्बलता के दायें हाथ की ओर है।'

अभिशाप और अपदार्थ का उपन्यास है 'विश्वास का बल, कर्तव्य और निष्ठा का उपन्यास है यह। वाजपेयी जी के जीवन के मध्य और उत्तरकाल में प्रकाशित हुए उपन्यास समाज के यथार्थ का चित्रण है और भावी योजनाओं की ओर आदर्श का संकेत है।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में आधुनिक समाज में व्याप्त परम्पराओं और नए युग की चेतना का अद्भुत मिश्रण है। मनुष्य की तृष्णा आकांक्षा, ईर्ष्या आदि वृत्तियाँ एँकागी स्वार्थ से युक्त नियमों का सृजन करती है। वाजपेयी जी का उद्देश्य समाज का उन्नयन है यही उनके समस्त उपन्यासों का विषय है।

१. उदयशंकर भट्ट : प्रारंभिक उपन्यासों की उपलब्धियां

परम्परागत उपन्यासों से भिन्नता :- परम्परागत उपन्यासों से हमारा तात्पर्य है प्रेमचन्द के पूर्व जो उपन्यास हिन्दी में आ रहे थे ।बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र हिन्दी, पत्र- पत्रिकाओं में निबन्ध लेखक के रूप में जाने जाते हैं किन्तु उन्हीं के साथ देवकी नन्दन खत्री, गोपालदास गहमरी, गुलेरी जी आदि ने कथा साहित्य में वृहत् योगदान किया है। देवकी नन्दन खत्री के तिलिस्मी उपन्यास घटना प्रधान थे । नवयुवक 'चन्द्रकांता और चन्द्रकान्ता संतति' को इस सीमा तक तन्मय होकर पढ़ते थे कि उन्हें भूख- प्यास भी नही सताती थी । किशोरी लाल गोस्वामी ने उपन्यासों में वासनाओं के रंग बिरंगे चित्र होते थे ।विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, जैनेन्द्र कुमार सामाजिक उपन्यास रचना के लिए विख्यात थे, वृन्दावन लाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास रचे । सामाजिक उपन्यासों में जमींदारों के अत्याचारों से पीड़ित कृषक वर्ग था जो शोषित ही होता रहा है । प्रेमचन्द और प्रसाद के उपन्यासों में अन्त : प्रकृति और कुण्ठाग्रस्त जीवन चित्रित है ।

परम्परा के रूप में प्राप्त उपन्यासों ने समाज रचना में विशेष योगदान किया है । चमत्कार प्रधान उपन्यास (चन्द्रकांता आदि) पढ़ते समय तक की जिज्ञासा बनाए रखते थे । प्रेमचन्द के सामाजिक उपन्यासों में सेवा सदन, निर्मला, गोदान आदि प्रसिद्ध हुए कौशिक का भिखारिणी, मां और प्रताप नारायण श्रीवास्तव का विदा, विकास और चतुरसेन का हृदय की प्यास ' समाज संस्कृति की ओर इंगित करते हैं। उपन्यासों के साथ छोटे - छोटे विषयों पर कहानियां भी लिखी जाती रही है ।'मानसरोवर' के आठ भागो में प्रेमचन्द और पांच कहानी संग्रहों - में प्रसाद जी की कहानियों को प्रकाश में लाया गया है ।ईदगाह, शतरंज के खिलाड़ी तथा 'आकाश दीप और 'गूदड़ साई' को हम कभी नहीं भूल सकते । भगवती प्रसाद वाजपेयी की कथा साहित्य - कहानी और उपन्यास - कहीं-कहीं नाटकीय रूप से मानवीय संवेदना को व्यक्त करने में सफल एवं सिद्धहस्त है । जबकि उनके पूर्व उपन्यासों में नाटकीय विम्ब नहीं थे । एक बिन्दु लगभग सभी समकालीन कथाकारों में मिलता है, वह है अपनी ओर से रचनाकार का सार्वभौमिक सत्य का प्रतिपादन । भगवती प्रसाद वाजपेयी से पूर्व प्रेम के विविध स्वरूपों का चित्रण अपेक्षाकृत बहुत कम था । किन्तु, वाजपेयी जी ने प्रेम के निर्वाह के लिए ऐसे विस्तृत चित्र - फलक को चुना है जहां प्रेम के साथ कर्तव्य, निष्ठा और सदाचारण है दूसरी ओर ईर्ष्या, कुण्ठा, विश्वसहीनता जैसी वृत्तियां है । नारी केन्द्रित अनेक उपन्यास मे प्रत्यक्ष प्रेम, त्रिकोण रूप प्रेम, प्रेम कर्तव्य का द्वन्द्व, विचारात्मक प्रेम की ईर्ष्या जनक परिणित आदि अनेक क्षेत्र उद्घाटित किए गए हैं ।

"भगवती प्रसाद वाजपेयी जागरूक साहित्यकार है। समय - समय पर उनकी विचारधारा ने जो मोड़ लिए उनसे इसका स्पष्टीकरण होता है।[३]" "कथाकार वाजपेयी जी लोकमंगलकारी साहित्यकार है। वे विघटनकारी उस व्यक्तिवादी साहित्य के प्रतिष्ठायक नहीं है जो भौतिकवादी मान्यताओं पर टिका हुआ निरन्तर निराशा और अव्यवस्था का धुआँ उगला करता है। यह अवश्य है कि व्यक्ति की बारीकियों को मनोवैज्ञानिक शैली में उभारकर वे यथार्थ की अनुभुत झांकी प्रस्तुत करते हैं। परन्तु, अपनी समग्रता में यह सारा प्रयास समष्टि हित में पर्यावसायी है। समष्टिहित उनकी दृष्टि में युगपुरूष गाँधी और विनोबा द्वारा निर्दिष्ट और स्वयं की अनुभूति और आचरण से पूजित पथ है।[४]

"श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के कथाकारों में है और प्रेमचन्दोतर हिन्दी - कथा- साहित्य में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वाजपेयी जी ने अपने कथानक और चरित्र की प्रेरणा समाज से ग्रहण की है और उनकी रचनाओं में सामाजिकता का ऐसा गुण है जो हमें उनकी और आकृष्ट किए बिना नही रहता। निश्चित ही वे गाँधीवादी युग से प्रभावित हुए है और इसीलिए उनकी कृतियां ऐसी आदर्शवादी भूमि पर प्रतिष्ठित है जिन्हें भारतीय संस्कृति के जीवन्त तत्वों से सम्बद्ध करके सहज ही देख सकते हैं।"[१] (डॉ. आत्मानन्द मिश्र, सागर)

श्री हरिभाउ उपाध्याय जी का मानना है कि प्रेमचन्द परम्परा का पूर्ण निर्वाह करते हुए भी वे पूर्ण परम्परावादी उपन्यासकार नहीं है। वे 'पुरानीपीढ़ी के आदर्शवादी छोर से छूते है, वहां दूसरी ओर उनकी भावुकता अपने आधुनिक परिवेश में आजकल के रोमांटिक नवयुवकों को भी अभिभूत किए रहती है।[२]' वाजपेयी जी के विचार नये से नये विषय को छूते हुए भी मूर्त रूप से भारतीय संस्कृति के प्रतीक होते है। भारतीय संस्कृति मूलरूप से सार्वजनिक आत्मीय एकता की और इंगित करती है।[३]

वाजपेयी जी की विशेषता है कि उनका "साहित्यिक निर्माण में नहीं हिन्दी भाषा के प्रसार और प्रचार में भी योगदान रहा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यों से भी उनका सम्बन्ध रह चुका है। ऐसे रचनाशील शुद्ध मसिजीवी और हिन्दी की तीन पीढ़ियों के उतार- चढ़ाव को अपनी आखों से देखने वाले साहित्य साधक ' वाजपेयी जी युग- युगों तक अपनी रचना धर्मिता से ही जाने जाएँगे।'[४]

काठमांडू के त्रिभुवन विश्वविद्यालय, के कुलपति श्री रुद्रराज पाण्डेय ने श्री वाजपेयी जी को चूडान्त कथा शिल्पी कह कर अपना आदर व्यक्त किया है।

१. 'मानसरोवर' शीर्षक से प्रेमचंद की कहानियों को संकलित किया गया है यह पुस्तक ८ खण्डों में लिखी गई प्रेमचन्द की समस्त कहानियां है।

२. प्रसाद की कहानी संग्रह - प्रतिध्वनि, आधी, इन्द्रजाल, आकाशीदीप, छाया

३. पं. अयोध्यानाथ शर्मा, वी. एस. एस. डी कालेज कानपुर

४. डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन।

भगवती प्रसाद वाजपेयी में ही पारसमणि विद्यमान है और उस अध्यवसायी मणि ने उन्हें स्वर्ण बनाया और उसे खूब तपाकर शुद्ध उज्ज्वल, और कांतिमय बनाया।[५] वाजपेयी जी के उपन्यासों में समकालीन जीवन परिस्थितियों का सही प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है जो भावी इतिहासकार के लिये भी बहुत ही उपयोगी होगा।[६]

इस प्रकार भगवती प्रसाद वाजपेयी परम्परावादी विचारों को नए परिवेश में रखकर भूतकाल और भविष्य का विचित्र संगम - संसार प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त है।

देशकाल में किसी देश विशेष के परिवेश की घटनाएँ होती है। घटनाएँ काल्पनिक होती है तथापि ऐसा अनुमान कर लिया जाता है जैसे वे वास्तविक रूप में घटित हुई हैं। देश के किसी भू - भाग में जो घटनाएँ घटित होती है। उनमें समय का विशेष महत्व है। काल - खण्ड की किस ऋतु परिवेश में रीति, रिवाज और परम्पराओं, पशु- पक्षियों, वनस्पतियों, कृषि, वानिकी और पर्व - उत्सवों, तीज, त्यौहारों के वर्णनों से वातावरण का निर्माण होता है जो देश- काल को परिपुष्ट करता है। ये वर्णन आश्चर्यजनक लग सकते हैं पर इन्हें अस्वाभाविक नहीं होना चाहिए।

देशकाल के वर्णन में लेखक का निहित उद्देश्य का भी ज्ञान हो जाता है। अतएव वातावरण की सृष्टि जब देशकाल मे अनुरूप होती है तो उसमें अस्वाभिविकता की गुजायश अपेक्षाकृत नहीं रहती।

उद्देश्य - काव्य की परिभाषा करते हुए मैथ्यू आर्नोल्ड ने उसे सत्य और सौन्दर्य की परिधि में जीवन की समालोचना' कहा है। यह परिभाषा काव्य के लिए जितनी सही है उससे भी अधिक वह उपन्यास में मुखर है। उपन्यास जीवन के स्थूल स्वरूप को सामाजिक परिधि में प्रस्तुत करता है।

हडसन की मान्यता है कि उपन्यासकार अपनी रचनाओं में अपने जीवन पर पड़ी हुई छाप को व्यक्त करता है। महान उपन्यासकार जीवन कचिन्तक रूप में निरन्तर विचार करते हैं, वे चिन्तक भी रहे और पर्यवेक्षक भी। अतएव उनकी दृष्टि चरित्र विषयक ज्ञान, उद्देश्य, वासना, समस्या, स्थायी तत्व और उनकी अपनी परिपक्व वृद्धि संसार के प्रति ऐसा नैतिक मूल्य स्थापित करते हैं जिसकी उपेक्षा की ही नहीं जा सकती। संसार का केन्द्र मानव है और यह विराटविश्व उसका रंग स्थल है। इस विश्व व्यापी फलक पर मानव चरत्रि का चित्रण करने के पर्याप्त अवसर भी है। अतः उपन्यासकार के पास इस विश्व में होने वाली प्रत्येक हलचल को मूर्त रूप देने में कोई कोताही नहीं होती तथापि वह अपने अनुरूप उस सभी का चित्रण करता है जो उसकी सीमा क्षमता में रहता है।

२. श्री हरिभाऊ उपाध्याय - सम्मति - जीवन और यौवन के लेखक : वाजपेयी जी । पूर्व मुख्यमंत्री राजस्थान की सम्मति

३. वही ।

४. वही

५. कृष्ण विनायक फड़के -

इसमें सन्देह नहीं है कि मनोरंजन उपन्यास का एक आवश्यक अंग है किन्तु, मात्र मनोरंजन के लिए कोई भी उपन्यास नहीं लिखे पढ़े जाते है। उपन्यास बहुमुखी प्रतिभा का समुच्चय है। अतः यह विधा पाठको को जीने की कला भी सिखाती है। उपन्यास मनोरंजन के अतिरिक्त दिशा निर्देशन का भी कार्य करता है और जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालता है। उपन्यास अपने पाठकों में उदारता और सहानुभूति, विनोद और नैतिकता, सौन्दर्यबोध और चेतना का विकास कर उन्हें उत्कर्ष की ओर ले जाता है। उपन्यास द्वारा पाठकों और सामाजिक संस्थाओं में सुधारवादी प्रवृत्ति जगाकर उन्नतिगामी बनाने की भी प्रेरणा दी है। इसका उत्तम उदाहरण 'परीक्षा - गुरू' उपन्यास है। उपर्युक्त गुणों से सम्पृक्त उपन्यास एक जनतांत्रिक लोक की निर्मिति में भी सहायक है।१ (रामस्वरुप चतुर्वेदी)

वैयक्तिक अनुभूतियों से मानववाद तक पहुँचाना उपन्यास का ही दायित्व है प्रथम और अंतिम। उपन्यासकार विकृत मनोवृत्तियों को सुधार प्रेरित करता है और जीवन में सुख - शांति की अवधारणा स्थापित करता है। मानव जीवन को उदात्त चित्रित करता और मानवीय संवेदनाओं का प्रत्यक्षीकरण करना उपन्यास का एक महत्त उद्देश्य है।

शैली- किसी भी उपन्यास को विविध शैलियों में प्रस्तुत किया जा सकता है। जो शैली सामान्यतः प्रचलित है वह है कथा को प्रस्तुत करने की सामान्यप्रत्यक्ष अथवा परोक्ष शैली किन्तु, इनके अतिरिक्त कहानी के माध्यम से भी उपन्यास कहे जाते हैं।इलाचंद जोशी का 'पर्दे की रानी' ऐसा ही उपन्यास है जिसमें शीला की कहानी और निरंजना की कहानी क्रम से दी हुई है। नाटकीय शैली में पात्रों का संवाद प्रमुख रहता है। पत्र शैली में उपन्यास नहीं के बराबर लिखे गए हैं। प्रथम पुरूष में लिखा गया उपन्यास आत्मकथात्मक होता है तदपि ऐसे उपन्यास कम है। फे सहारे भी उपन्यास लिखे गए है जहां मनोविकार पात्र के रूप में प्रस्तुत किए गए है। भगवती प्रसाद वाजपेयी का गुप्तधन' ऐसा ही एक उपन्यास है। इसके बाद राहुल ने 'वॉल्गा से गंगा' उपन्यास का २४ कहानियों के माध्यम से मानव समाज की रचना और विकास को चित्रित किया है। गुप्त धन के पात्र मनोवृत्तियों के नाम पर किए गए है । 'शैली स्वयं मनुष्य है।२ एक अमृत वाक्य है।

शैली एवं वर्ण्य विषय का सम्बन्ध उपन्यासों में रचना कौशल की अभिव्यक्ति है। लघु - उपन्यासों में यह अभिव्यक्त संक्षिप्त हो जाती है फ़िर सांकेतिक अथवा नाटकीय शैली का प्रयोग करता है। शरतचन्द्र ने लघु उपन्यास के विषय में अपना अभिमत प्रकट किया है जो रचना- शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है- 'छोटा होने से ही तो रस साधन होगा।'[१] उपन्यास के पात्रो के साथ पाठक स्वयं किसी

1. Style is the man himself.
१. डा. महादेव प्रसाद - शरद पत्रावली पृ. ११
२. सीताराम चतुर्वेदी - समीक्षा शास्त्र पृ. ५६५

पात्र के साथ तादांत्म्य करके चलता रहता है। इस तादात्म्य में रूढ़िया, लोकोक्तियां, मुहावरे आदि अत्यधिक जिसमें देशी शब्दों से अपेक्षाकृत अधिक समन्वित हो जो अधिक प्रभावी हो। [२]

शैली और शिल्प में शैली कथ्य का माध्यम है जबकि शिल्प एक सम्प्रेषण की क्रिया है। शैली अभिव्यक्ति का अपरिहार्य अंग है। उपन्यास में कहानी न कही जाय अपितु कथाएँ घटित हुई सी प्रतीत हों और उपन्यासकार इसी बीच के रहस्यों की पर्त खोलता हुआ प्रतीत हो। अर्थात उपन्यास पढ़ते समय हम उसके साथ चलें, ऐसा प्रतीत न हो कि कोई उपन्यास पढ़ा जा रहा है।

रस सिद्धि - उपन्यास में जिसे 'सेटिंग' कहा गया है वह वातावरण निर्माण की चेष्टा है। कथानक - वातावरण के साथ - साथ चलने से जो आत्म साक्षात्कार की स्थिति होती है वह पात्र और पाठक के मध्य एक मधुमती भूमिका का निर्वाह करता है। यह मधुमती भूमिका ही रस सिद्धि है। गुलाबराय जी ने पाश्चात्य विचार मोटिव (Motive) को रसास्वादन के निकट माना है। वे राजनीतिक उपन्यासों में करूण और वीर रस की स्थिति को स्वीकारते है किन्तु वीभत्स को उपन्यासों में चित्रित करने को मान्यता नही देते। उपन्यास की दृष्टि भी महाकाव्य के समान है जिसमें रसोद्रेक होना अनिवार्य है। वर्तमान युग के उपन्यासकार यौनावेग को उत्तेजित कर नग्न श्रृंगार प्रदर्शन से पाठक तो अवश्य बढ़ा लेते है किन्तु, वीभत्स से कोई बचाव नहीं रहता। ऐसे उपन्यास समाज को स्वस्थ मानसिक चिन्तन और रसानन्द प्रदान नहीं करते। उपन्यास को काव्य की भांति ही रसोद्रेक बन चित्ताकर्षक बनाना चाहिए।

उपन्यास की मूलभूत स्थापनाएँ - प्रत्येक उपन्यासकार की अपीन एक दृष्टि होती है उसकी मान्यतायें भी संस्कार बात है तथापि सामाजिक प्रभाव और वातावरण से अर्जित यथार्थ के बीच में वह अपनी विचारोत्पन्न भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर नए आदर्श की सृष्टि करने लगता है जिसमें उसका मूलभाव निहित रहता है। मात्र यथार्थ का चित्रण उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं होना चाहिए वह दिशा निर्देशक भी है।

१. क्राफ्ट ऑफ फिक्शन

२. स्कॉट जेम्स - Makiue of letsature. P. 369-70

उपन्यास लेखन एक कला है। अत्यन्त कुशल उपन्यासकार भी अपनी कलाकृति में जीवन की अनुभूति ही करता है। कथानक के रेखाचित्र में जीवन को बांधना ही उसकी कला कुशलता है। जीवन एक सतत प्रवाहमगन सरिता है। अतः ये रेखाएँ सिमिटिती - बढ़ती रहती है, धूमिल - चमकीली भी होती रहती है- इन्ही से जीवन - प्रयोजन भी रसमय होता है। अतः उपन्यासकार का क्षेत्र और शिल्प दोनों ही व्यापक होते हैं। हमें कथानक का रूप स्थापित करना पड़ता है, एक आकृति हमें बनाना पड़ती है। हम मात्र कहानी कहकर उपन्यास को न तो रोचक बनाते है और न ही उपादेय। उपन्यास को जीवन्त बनाने के लिए रूप वैशिष्ट्य होना आवश्यक है। यह स्पष्टतः स्वीकार्य होना चाहिए कि लेखक और जीवन की घटनाओं में सामन्जस्य होना चाहिए जिसमें रूढ़ियों के वन्धन से मुक्त रहने की क्षमता निहित है।

'आवश्यक यह है कि पाठक कहानी में आते ही जो कुछ उसमें लिखा है उस पर विश्वास करने लगे।' इस तथ्य को साहित्य समीक्षक भी स्वीकार करते है। ई० एम० फारेस्टर इसे केन्द्रीय बिन्दु मानते है जबकि लबाक ने क्राफ्ट ऑफ फिक्शन में इसे परिधि पर माना है किन्तु, दोनों ही उपन्यास समीक्षक इसे अस्वीकार नहीं करते कि पाठक और कथा - पात्र में एकरूपता होना चाहिए। प्रत्येक अच्छा उपन्यास अपनी विषय वस्तु के सयोजन और शिल्प, कथ्य, शैली, व्यवस्था, उपमा, साहश्य और विरोध, आश्चर्य और कथानक की विविधता, मानवीकरण और ऐसे ही सहस्त्रादिक विषय की ओर इंगित करता है जिसे अच्छा समालोचक उसकी गुणवत्ता और अच्छे शिल्प की कसौटी पर परखता है।[३] उपन्यास विविध धरातलों पर अपना कथानक - प्रस्तुत करता है किन्तु समालोचक अपने निश्चित मानदण्डों पर उसे परखता है - ल्यूवॉक उसे कला की विविधताओं में ही देखने का हामी है।

इसी सन्दर्भ में स्कॉट जेम्स ने उपन्यास लेखकों के लिए भी चार नियम निर्धारित किए हैं जो अधिक संगत प्रतीत होते है-

(१) उपन्यासकार को उस विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए जिस पर वह गहन गम्भीर चिन्तन कर अपने उपन्यास के कथानक में गुम्फित कर सके। विचार की यह दृष्टि, घटनाओं और समस्याओं का विश्लेषण कर उन्हें यथार्थ में प्रस्तुत कर, दिशा निर्देश कर सके।

(२) उपन्यासकार निरन्तर अध्ययनरत रहे ताकि अपने अध्ययन से अपने कथानक के साथ पूर्ण न्याय कर सके । कथानक समाज से विकसित होते है अतः समाज की ऐतिहासिक दृष्टि भी उपन्यासकार के लिए आवश्यक है।

३. वही पृ. ३७१

(३) मानव- स्वभाव और चरित्र के रहस्यों का गूढ़ अध्ययन उपन्यासकार के ज्ञान को निरन्तर विकसित करता रहे क्योंकि अन्ततः उपन्यासकार मानव चरित्र का ही तो चित्रण करता है। यह अध्ययन सार्वभौमिक सीमाओं तक विस्तृत होना चाहिए जिसमें विभिन्न प्रकार के मानव चरित्रों के अध्ययन करने का अवसर बना रहे ।

(४) उपन्यासकार में सहजानुभूति की संवेदनाओं का भण्डार होना चाहिए। यदि वह अपने पाठकों को करूणा के संवेदना से रोता देखना चाहता है तो स्वयं भी रचना करते समय आंसू बहाए।[४]

अन्त में जीवन की निकटता को चित्रित किरने में जितनी शक्ति होती है उतने ही उसमें खतरे हैं। मन, बुद्धि और मानव - चरित्र अन्योन्याश्रित है। इनके समन्वय से ही उपन्यास जीवन सदृश नही बनता अपितु जीवन के सत्य को उद्भासित करता है।

१. स्कॉट जेम्स - Making of Literature P. 371 - 72

द्वितीय अध्याय

(उपन्यासों का सामान्य परिचय, वर्गीकरण - प्रारंम्भिक उपन्यास, आदर्श / यथार्थवादी उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास, सामाजिक / सांस्कृतिक उपन्यास - पपरम्परा से भिन्नता, प्रमुख उपन्यासों का साहित्यिक - अनुशीलन)

(अ) उपन्यासों का सामान्य परिचय :

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने १९२६ से उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था। इसके पूर्व वे कहानी कवितायें लिखते थे जिनमें वस्तुतः वे वह नहीं कह पाते थे जो उनका अपना अनुभव था। मात्र कल्पना जीवी होकर वे अपने लेखन को पूर्णता देने में असमर्थ अनुभव करते थे। उन पर शरतचन्द्र और प्रेमचन्द का प्रभाव था अतः अपने मन - आत्मा के मन्तव्य को वाणी देने के लिए उन्होंने उपन्यास लेखन का मार्ग चुना। उपन्यासों में वे अपनी बात कहने में सक्षम और समर्थ थे। प्रेम- पथ, अनाथ पत्नी, दो बहिनें एकदा, निर्यातन, गुप्तधन, पिपासा, पतिता की साधना, निमंत्रण, टूटा टी सैट, दूखन लागे नैन, छोटे साहब आदि लगभग ४५ उपन्यास लिखकर वाजपेयी जी ने समाज में मुख्य रूप से प्रेम, वासना और कर्तव्य के संघर्ष का चित्रण करते हुए यथार्थ, आदर्श और मनोवैज्ञानिक स्थितियों का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों की एक तालिका प्रकाशन वर्ष के अनुसार पूर्व में उल्लिखित है और प्रमुख उपन्यासों की समीक्षा तथा वैचारिक विकास को 'ब' खण्ड में प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यासों का वर्गीकरण :

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास कार रुप का विकास और तद्नुसार उपन्यासों की रचना उनके वैचारिक स्तर के उन्नयन के अनुसार ही है। मुख्य रूप से उनके उपन्यासों को हम निम्नवत वर्गीकृत कर सकते है-

१- आदर्श - यथार्थ / सुधारवादी उपन्यास

२- आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास

३- सामाजिक उपन्यास

४- मनोवैज्ञानिक - विचारवादी उपन्यास

५- सांस्कृतिक उपन्यास

१. प्रेमचन्द - प्रेमपथ - विमर्श

प्रथम दो वर्गों में आदर्श - यथार्थ से तात्पर्य उन उपन्यासों से है जो प्रेमचन्द की अनुरुपता में लिखे गए है यथा - प्रेमपथ, अनाथ पत्नी, मीठी चुटकी आदि। यह काल : १९२६ से १९३४ तक गिना जा सकता है जब लालिमा उपन्यास का प्रकाशन हुआ। इस समय तक सात उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे जिनमें प्रेम - वासना और कर्तव्य को घुमा - फिरा कर नए प्रतिमानों में प्रस्तुत किया गया था।

पतिता की साधना (१९३६) दूसरे चरण का और वाजपेयी जी की उपन्यास रचना का मील का पत्थर है। सामाजिक समस्याओं के साथ प्रेम - कर्त्तव्य और विवाहादि के पारिवारिक संघर्ष को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास १९५० तक लिखे जाते रहें जिनमें पतिता की साधना, पिपासा, निमंत्रण, दो बहिनें आदि उपन्यासों की रचना हुई है। सामाजिक जीवन के संघर्ष को इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है।

'गुप्तधन' (१९५०) में प्रकाशित हुआ। यह मनोवैज्ञानिक - दार्शनिक उपन्यास का सफल प्रयोग सिद्ध हुआ। १९५० तक एक - एक वर्ष में तीन - तीन उपन्यास लिख वाजपेयी जी ने यह सिद्ध किया है कि समाज के जीवन दर्शन को अनेक विवधताओं में देखा जा सकता है। पतवार, धरती की सांस, मनुष्य और देवता, भूदान विश्वास का बल, सूनी राह आदि अच्छी और प्रौढ़ उपन्यास कृतियां साहित्य को दी गई।

साठ के दशमें प्रकाशित होने वाले उपन्यास सामाजिक सांस्कृतिक उपन्यास है। इनमें सपना बिक गया, एक प्रश्न दूखन लागे नैन, अधिकार का बल अधिक महत्वपूर्ण है

इसके उपरान्त वैचारिक स्तर से निरन्तर लिखे गये उपन्यासों में मुझे मालूम न था, छोटे साहब, विजय श्री, वासना से परे आदि उपन्यास है। ये सब सांस्कृतिक परिवेश के उपन्यास है।

प्रेमपथ से कर्मपथ तक वाजपेयी जी के उपन्यासों की एक लम्बी यात्रा है। वाजपेयी जी का मूल विषय प्रेम का विश्लेषण है। प्रेम - वासना - कर्त्तव्य, परम्परा - वर्तमान - भविष्य, रुढ़ि - व्यसन - प्रगति, आदि त्रिकोणों में अर्धवान, निर्धन, नारी जीवन की सदाशयता, अच्छृंखलता, चंचलता और समर्पण जैसी वृत्तियों को सात्विक प्रेम और फ्रायडवादी यौन - कुण्ठा के प्रसंगों में भी इन उपन्यासों में अनेक रुपेण अध्ययन किया गया है।

(ब) भगवती प्रसाद बाजपेयी के प्रमुख उपन्यासों का साहित्यिक अनुशीलन

वाजपेयी जी ने १९२६ से उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था। उनके दस प्रतिनिधि उपन्यासों का साहित्यिक अनुशीलन इस दृष्टि से प्रस्तुत किया जाना संगत है कि उनके इन उपन्यासों में विकसित हुए विचार और भावना को अभिव्यक्ति प्रदान करना उनके अपने मानसिक और आत्मिक उन्नयन का द्योतन भी है। ये उपन्यास प्रारम्भकाल की नारी - केन्द्रित भावनाओं को यदि पवित्र अभिव्यक्ति देते है तो 'गुप्तधन', 'विश्वास का बल', 'अधिकार का प्रश्न' उनके चिन्तन और मौलिक विचारों पर एक थीसिस है। उनके इन दस उपन्यासों के अध्ययन से वाजपेयी जी की उपन्यास यात्रा के वैचारिक उन्नयन को भी जाना जा सकता है।

ये उपन्यास है -

(१) प्रेमपथ, (२) पतिता की साधना, (३) दूखन लागे नैन, (४) पिपासा, (५) सूनीराह, (६) निमंत्रण, (७) गुप्तधन, (८) विश्वास का बल, (९) अधिकार का प्रश्न और (१०) उनसे न कहना।

इन उपन्यासों में उनके क्रमिक विचार विकास को भी जाना जा सकता है। वाजपेयी जी के उपन्यासों की यात्रा भावजगत से विचार - जगत और अंततः सामाजिक परिवेश की मानवीय विचार अविव्यक्ति है।

प्रेमपथ-

मुंशी प्रेमचन्द के समकालीन समाज का चित्रण करना कठिन था, किन्तु वाजपेयी जी ने प्रेमचन्द के समान ही जीवन की कठिनाइयों का सामना किया था। प्रेमचन्द और भगवती प्रसाद वाजपेयी दोनों ने ही परिस्थितियों से समझौता नहीं किया, दोनों में साम्य के साथ - साथ एक विचित्र वैषम्य भी है। प्रेमचन्द स्वच्छन्द प्रेम के विरोधी थे और वाजपेयी जी पोषक। प्रेमचन्द के अनुसार 'स्त्री- पुरुष से प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अन्त विवाह न हो, केवल वासना हो, वह कलुषित है। उसकी निन्दा होती है और होनी भी चाहिए, अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जाएगी।[१] वाजपेयी जी के सम्पूर्ण उपन्यास संसार का प्रतिपाद्य है 'स्वच्छन्द प्रेम', जो पति- पत्नी के वैवाहिक सीमित संसार तक नहीं है, उनके मतानुसार स्त्री- पुरुष के सहज प्रेम को भी स्वीकृति मिलनी चाहिए। वाजपेयी जी की रचनाओं के मूल में यही स्वच्छन्द प्रेम की शक्ति है। यही विन्दु है जहां वे अपने समकालीन लेखकों से भिन्न हैं। जिस युग में स्वतंत्रता आन्दोलन चरम बिन्दु पर उसके एक चरण जाति - वर्ण - विहीन समाज की रचना पर वाजपेयी जी की क्रियात्मक विचारशीलता एक क्रान्ति थी।

१. प्रेमचन्द - प्रेमपथ - विमर्श

प्रेमपथ -

प्रेमपथ की कथा का आधार स्वच्छन्द प्रेम का ही एक विचार है जो विवाहिता पत्नी के होते हुए भी उसकी छोटी विधवा बहिन के साथ प्रेमाचार की कथा में गुम्फित है। रमेश इस उपन्यास का नायक है। उसकी पत्नी रामा अल्पशिक्षित है। वह उसे अपने शिक्षित जीवन साथी के रूप में देखना चाहता है। किन्तु, उसकी भाभी को रामा का पढ़ना - लिखना नहीं सुहाया। प्रतिदिन होने वाली गृह - कलह का परिणाम यह निकला कि रमेश के बड़े भाई ने एक दिन स्पष्टत: उससे कह दिया कि जब एक घर में रहकर हम केवल कलह पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं तो बहतर है कि तुम अपने रहने की अलग व्यवस्था कर लो। बड़े भाई के नाते जो हो सकता था वह कर दिया गया। पढ़ाया लिखाया शादी भी कर दी अब रमेश को उससे अलग रहना ही चाहिए। रमेश इसके लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसकी अलमस्त जीवन - शैली समाप्त हो जाएगी। उसने चेष्टा भी की कि अपनी पत्नी रामा को उसकी मां के पास भेज दे किन्तु रामा इसके लिए राजी नहीं हुई।

कुछ दिनों उपरान्त रमेश अपने श्वसुर गृह रामनगर गया जहां उसकी भैंट रामा की छोटी बहिन तारा से हुई।तारा अधिक सुन्दर और अधिक आकर्षक थी, स्वच्छन्द और निर्भीक स्वतंत्र अस्तित्व वाली युवती तारा की स्मृति को भुला न सका। रमेश को कानपुर के एक समाचार पत्र में नौकरी मिल गई तो वह कानपुर जा बसा।

तारा ने अपने विवाह के निमंत्रण के साथ एक पत्र भी भेजा जिसमें लिखा था "अनुरोध करती हूं कि आप पधारने की दया करें आशा है आप समय पर आकर मुझे अपनाकर अपने हार्दिक प्रेम का परिचय देंगे।" चाहते हुए भी रमेश उसके विवाह में सम्मिलित न हो सका किन्तु तारा की निर्भीकता पर उसे विस्मय भी हुआ और क्षोभ भी। तारा ने अपनी ससुराल धीरजपुर में भी रमेश को बुलाया और तारा उसके निकटतर होती गई। तारा के अनेक पत्र कानपुर भी आए और एक दिन रमेश ने उसको उत्तर दिया कि जब अपने भाई के घर रामनगर जाएगी तब वही उससे मिलेगा। दोनों रामनगर में मिले। रमेश कई दिनों वहां रहा भी। उनका सम्बन्ध निकटतर होता गया। देर रात तक बातें करते रहना, स्वच्छन्द और निर्भीक निकट व्यवहार से रमेश हतप्रभ हो गया।

तारा विवाहिता थी। सहसा रमेश को सूचना मिली कि वह विधवा हो गई। अस्थिर चित्त उद्विग्न और विचार शून्य रमेश जितना अपने सम्पर्क पर विचार करता उतनी ही उसकी अस्थिरता और बढ़ जाती। अंतत: उसने नौकरी छोड़ दी। संयोग ऐसा कि उसकी पत्नी रामा, तारा और स्वयं वह भी

रामनगर पहुंच गए ।रामा पहले पहुँची और तारा के बुलाने पर रमेश भी पहुंच गया ।परिणाम यह हुआ कि दुर्भाग्य की मारी तारा सान्त्वना पाकर रमेश की झोली में जा गिरी - सम्बन्ध गहराते गए। तारा पुनः कठोर प्रतिबन्धों में धीरजपुर गई किन्तु शीघ्र ही रामनगर लौट गई। रमेश प्रेम के मोह पाश में इस सीमा तक जकड़ गया कि समाज में प्रतिवाद खड़ा होने लगा। रमेश ने वासनान्ध होकर तारा के साथ बरबस यौन सम्बन्ध स्थापित करने की चेस्टा की तो तारा ने उसका प्रतिवाद कर अपने सतीत्व की रक्षा कर ली। 'रामा' को इससे प्रसन्नता तो हुई होगी और फिर समन्वय की स्थिति में सब रहने लगे।

निष्कर्ष-

इस कथानक के मुख्य तीन ही पात्र है रमेश, रामा और तारा। अनेक विसंगतियों के होते हुए भी कथा का कुशल निर्वाह किया गया है- भले ही प्रेमचन्द के प्रेम - माप दण्ड पर वह प्रेम निरर्थक है जिसकी परिणति विवाह में न हो। इस कथा में किन्तु उनका नैतिक धरातल भी होता है-

प्रेमचन्द जी का कथन इसी उपन्यास सके सम्बन्ध है-

> **'समाज का आधार मनुष्य कृत बधनों पर ही है ।उन बन्धनों को हटा दीजिए, समाज का अस्तित्व मिट जाता है। इनमें कुछ बन्धन ऐसे हैं जिनकी पहिले चाहे जितनी जरूरत रही हो, अब बिल्कुल नहीं रही। उनका टूट जाना ही अच्छा है। लेकिन कुछ बन्धन ऐसे है, जो समाज के स्तम्भ है उनका टूट जाना कदापि वाछंनीय नहीं।"**

इस निकष पर तारा और रमेश का प्रेम कलुषित है। अगर विधवा साली का अपने जवान बहनोई के साथ एकान्त में रात - रात भर बातें करना, चुम्बन और आलिंगन करने से भी न हिचकना पवित्र प्रेम है, तो फिर संसार में अपवित्र प्रेम कहीं है ही नहीं। तारा बहुत दिनो तक अपने आप को धोका देने के बाद अन्त में रमेश की कुचेष्टा देखकर एक दिन उसका तिरस्कार करती है और रमेश लज्जित होकर उसके चरण पकड़ लेता है। सम्भवतः पाप का प्रायश्चित करना ही भगवती प्रसाद वाजपेयी का उद्देश्य रहा हो।

क्योंकि अन्त में तारा ही प्रेम की व्याख्या करती है

> **"जहाँ प्रेम होता है वहाँ लाज नही रहती, और जहाँ लाज रहती है वहां प्रेम नहीं होता" - उसका आत्मदमन करना आशीतीत हैं।**

एक बात विचारणीय है कि रमेश का चरित्र किस क्षितिज पर देखा जाय जो व्यक्ति प्राण - पण से अपनी पत्नी रामा के रूप सौन्दर्य पर रीझा था वही व्यक्ति तारा के स्वच्छन्द और निर्भीक व्यक्तित्व पर आसक्त हो गया। वह भी इस सीमा तक कि रामा का उसे किंचित भी ध्यान न रहा। रामा का सरल सीधा व्यक्तित्व है। वह उसी में किचित अधिक आकर्षक भी है तथापि उसके साथ रमेश का प्रेमालय

न तो प्राणवान है और न ही स्वाभाविक ठीक वैसे ही वे दोनों प्रतीत होने होते है जैसे विद्वान के सामने कोई कम पढ़ा - लिखा व्यक्ति । 'रामा' पत्नी है, इसलिए वह मूक है, समर्पित है, सब कुछ जानते हुए भी अनजान है । दूसरी ओर तारा अपनी बहिन की स्थिति से सचेत है । वह समझती है कि आत्मिक प्रेम आदर्श की परम सीमा है, वह काल्पनिक और वायवी भी है । प्रेम की दैहिक निकटता सन्तति परक है जिसे वासना कहते है । वह स्वयं अपने द्वारा किए गए प्रेम की परिणिति से परिचित है तभी वह रमेश की कुचेष्टा को निष्फल कर सकी ।

> **"मैने प्रेम किया था, आत्म समर्पण किया था, उस प्रेम**
> **का यह फल ? मैं जानती थी तुम मुझे प्रेम करते हो -**
> **मुझे प्यार करते हो - सखी भाव से करते हो, निष्काम भाव से करते हो ।**
> **तुम्हारे हृदय में एक क्षण के लिए भी कुत्सित भावना**
> **उत्पन्न हो सकती है, मुझे स्वप्न में भी पता न था ।"**
> **मैने भूल की उसी भूल का यह प्रायचिश्त है (प्रेमपथ से)**

रमेश को ऐसे तिरस्कार की कोई सम्भावना नहीं थी । यही उसका प्रायश्चित का क्षण था । दूसरा दृष्टिकोण लेखक का है । वह रमेश के मुँह से रामा को एक लम्बा सा व्याख्यान भारतीय नारी की स्थिति पर देने से नहीं हिचकता । नारी - स्थिति की चर्चा प्रेमचन्द युगीन सभी लेखकों ने की है । देश के स्वतंत्रता - जागरण में नारी की भी एक विशेष भूमिका थी अतः स्वाभाविक था कि लेखक नारी-चेतना की समस्या से स्वयं छटपटाता रहा होगा । यह स्वाभाविक ही था कि नायक रमेश ही समाज में स्त्रियों की दीन - हीन दशा पर भाषण देता भले ही अपने सन्दर्भ में वह विधवा तारा का शोषण करने से नही चूकता ।

"संसार में मानव समाज एक दिन अनेक बंधनो में बँधा हुआ था । स्त्री जाति पुरुषों की विलास सामग्री हो रही थी । पुरुष जितने स्वतंत्र और स्वाधीन हो रहे थे, स्त्रियां उतनी ही परतंत्र बनाई गई थीं । यह ऐसी बातें हैं, जिन्हें तुम अभी कदाचित नहीं समझ सकोगी । इसलिए कि तुम भी उसी स्त्री जाति का एक अंग हो, जिसे अब भी संसार का कुछ ज्ञान नहीं । तुम्हें क्या पता, हमारे देश में जितनी स्त्रियां हैं ।१

जो सुखी कही जा सकती है ?दिन पर दिन देश में विधवाओं की संख्या बढ़ती जाती है । लड़कियों के विवाह में कितनी असावधानी से काम लिया जाता है ?दस- दस बारह- बारह साल की दुधमुहीं बालिकाओं का विवाह ऐसी अवस्था के पुरुषों के साथ किया जाता है जो अपने जीवन के अन्तिम दिन पूरे करते होते है । इसका फल और प्रतिफल विधवाओं की बढ़ती हुई संख्या है ।

१. प्रेमचन्द - प्रेमपथ - विमर्श ।

(स्वयं रमेश क्या विधवा साली के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर नीति विरोधी आचरण नहीं करता ? कथनी और करनी का विरोध परक स्वरूप इतना पतित भी होगा ?)

"हमारे देश में स्त्रियों की कैसी दुर्दशा हो रही है। पुरुष जाति ने स्त्रियों को कितना पतित बना दिया है? उनमें व्यक्तिगत अधिकार उनकी आत्म मर्यादा किस प्रकार पद दलित हो गई है। पुरुष जाति स्त्रीजाति को मोह, पाप, अधर्म, असत्य और पाखण्ड की मूर्ति समझ बैठी। पुरुष स्त्रियों को केवल भोग और विषय की सामग्री के अतिरिक्त किसी योग्य न समझने लगे।" - (प्रेमपथ से)

इतने लम्बे भाषण में आदर्श के मापदण्डों में और पुरुष की अहंकारी वृत्ति में उपन्यासकार का मन्तव्य तो स्पष्ट हो गया किन्तु जिस पात्र ने इसे प्रतिपादित किया क्या वह स्वयं अपने ही निकष पर ठीक खरा उतरा ? रमेश जितनी आदर्श की बातें करता है उसका सँतोश भी उसका चरित्र नहीं हैं। किन्तु उपन्यासकार रमेश की वाणी में सदा चैतन्य है- अपने उपन्यास प्रेमपथ का उद्देश्य भी वह रमेश की वाणी में कहता है-

> **'अपने प्रेम की मर्यादा स्त्री अपने स्वामी में और स्वामी अपनी स्त्री में समर्पित करके परस्पर एक - दूसरे में संसार का सुखानुभव करना चाहते हैं। मेरी समझ में यह बड़ा सुन्दर है।'**

स्वयं वाजपेयी जी अपने कथन से सन्तुष्ट हुए प्रतीत होते है किन्तु प्रेमचन्द जी के अभिमत से पुष्ट कराकर निश्चित हो जाना चाहते है। पहला उपन्यास होने के कारण प्रेमचन्द जी का आशीर्वाद उनके लिए अनिवार्य भी था और सुखद भी । स्वयं प्रेमचन्द जी ने भी इस उपन्यास की प्रशंसा में लिखा है

> **'वाजपेयी जी ने हिन्दी - संसार को यह अच्छी वस्तु भेंट की है। वासना और कर्तव्य का अन्तर्द्वन्द्व देखकर आप चकित हो जाएँगे। देखिए वासना कैसे कैसे कपट वेश धारण करती है - कभी दार्शनिक बन जाती है, कभी भक्ति के रूप में नजर आती है, पर है वह वासना।**
>
> *(प्रेमचन्द - प्रेमपथ- विमर्श से)*

प्रेम और वासना का स्वरूप और प्रेम और कर्तव्य का यह संसार ही 'प्रेमपथ की प्रतिष्ठा है - प्राण है।

पतिता की साधना -

पतिता की साधना १९३६ में प्रकाशित हुआ। प्रारंभिक उपन्यासों में प्रेम- पथ के बाद 'मीठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'मुस्कान' (पुनः संस्करण' त्यागमयी), 'लालिमा', 'प्रेम- विवाह' सभी उपन्यासों का मूल बिन्दु कहीं न कहीं प्रेम वासना, प्रेम - कर्त्तव्य, प्रेम- विवाह जैसे अन्तः संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों से उदभूत थे। १९३६ में प्रकाशित "पतिता की साधना' अपने शीर्षक से ही समाज परक प्रतीत होता है। यद्यपि यह उपन्यास अन्य पूर्व प्रकाशित उपन्यासों की भांति ही नारी केन्द्रित एवं नायिका - प्रधान है तथापि इसके सामाजिक परिप्रेक्ष्य ने इसे नये आयामों में प्रस्तुत किया है। इसे वाजपेयी जी की उपन्यास यात्रा का मील का पत्थर कह सकते हैं। इस कृति से उपन्यासकार व्यक्तिगत जीवन- सम्बन्धों की परिधि से निकल कर सामाजिक क्षितिज में पदचारण करता है।

इस उपन्यास की नायिका नन्दा है जो अल्पायु में ही पिता और पति दोनों की मृत्यु के त्रास को भोगती है। नन्दा एक ग्रामीण जमींदार की बहू है। विवाहोपरान्त पति मिलन के बिना ही वह वैधव्य पीड़िता होकर रह गई। उसने तो अपने पति को विवाह मण्डप के अतिरिक्त देखा तक नही था। अपने घर - पितृ गृह में रहती रही जब तक कि उसके देवर का विवाह आसन्न नहीं था। इस अवसर पर जब वह श्वसुर गृह गई, वहीं उसकी भेंट दूर के रिश्ते के देवर हरनाम से हुई। हरनाम उसके रूप पर मुग्ध है और चन्द्रमुखी के विवाह उत्सव पर वह सहज ही उन्मादिनी सी हरनाम के बाहु वलय में पहुंच कर एक विचित्र अनुभूति से तृप्त होती रही।

बाद में अपने भाई के लौटने पर हरनाम का आना जाना बना रहा और इस मिलन सुख का परिणाम था उसके उदर में संतति का बीजारोपण। इस उदर-भार की लोक- लाज से बचने के लिए वह मरण का सहारा लेने के लिए कुएं में कूद पड़ी किन्तु बचा ली गई। होश तो तब आया जब उसकी भावज द्वार पर उदास बैठी उसे पंखा झल रही थी और उसने देखा उसकी साड़ी भी बदली हुई है। ऐसी स्थिति को लक्ष्य कर उपन्यासकार ने एक स्थान पर नन्दा से कहलवाया है -

> **"ब्याह के पहिले ही एक - दूसरे के स्वभाव और जीवन का परिचय पा लेने में, दोनों के मेल से जब कभी कोई अपनी सभ्यता की मर्यादा भंग कर बैठेगा तब उसकी जिम्मेदारी किसकी होगी ?तब उस दशा में यदि एक और नारी का सर्वस्व परिचय प्राप्त कर लेने के बाद तुम कह दोगे कि मुझे तो यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं है, तो वह अबला वह उच्छिष्ट - सी, अपदार्थ - सी किसी अंधकूप में गिरकर अपना प्राण विसर्जन करने के सिवाय और कहां क्या आधार पाएगी ? आज भी जो लोग लड़की देखकर विवाह करते**

हैं, उसमें जब कोई कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देता है
कि वह सम्बन्ध फिर स्थिर नही रहता, तब वर पक्ष वालों का
तो कुछ नहीं बिगडता, लेकिन कन्या - पक्ष की कितनी अधिक
अप्रतिष्ठा हो जाती है। कितना विद्रोह इसके प्रति उनमें भर
जाता है, कभी आपने सोचकर देखा है।' (पतिता की साधना से)

उक्त कथन आज भी प्रासंगिक है, कल भी प्रासंगिक रहेगा, यह एक यथार्थ है जो समाज में प्रति दिन देखने को मिलता है।

प्रसव के उपरान्त नन्दा इस महानगर कानपुर में वेश्याओं के मुहल्ले में रहने लगी किन्तु वह वेश्या नहीं थी। हरिनाम को भाई से झगड़ा करने के फलस्वरुप जेल हो गई। पश्चाताप से उसने अपनी आंखे फोड़ ली और 'सूरदास' बन कर भिखारियों की टोली में साथ हो लिया। भटकते हुए वह नन्दा से मिला और कहानी फिर सहज और सुखान्त हो गई।

चरित्र निर्माण में वाजपेयी जी अद्वितीय है। उनके मन में बैठी संस्कारगत पत्नी/स्त्री कुलटा नहीं बनने पाती। नन्दा भी ऐसी ही है। यदि वह हरिनाम को सर्वस्व दे बैठी है तो जीवन भर उसी की ही रहेगी। ऐसा ही हरिनाम भी है। पश्चाताप से वह और अधिक पवित्र बन गया।

कृष्ण विहारी एक ग्रामीण जमींदार है। ऐसा जमींदार जो पाठक और सहज नागरिक की कल्पना का प्रत्यक्ष है। सबसे प्रभावशाली है 'चन्द्रमुखी के विवाह की बारात' जिसने नन्दा के विवाहोपरान्त मनोभावों को उत्तेजित किया है और बार - बार चन्द्रमुखी बनकर (कल्पना से) उसमें दाम्पत्य का यौवनावेग मचल उठा। उस समय वह विधवा नारी कहां थी वह तो सामान्या थी - सेन वो (Saint Boue) के शब्दों मीलू (Meilue) का एक अंश थी, एक पात्र थी। समाज की वास्तविक अवस्था यथार्थ कल्पना और पात्रों का उसी समाज से उभर कर समाज सम्पृक्त होना, समाज का सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रण (Graphic discription) वाजपेयी जी के समाज सापेक्ष उपन्यास की सफलता का रहस्य है। यौवन के उद्दाम आवेग मे चुम्बन और आलिंगन के अतिरेक ने नन्दा की 'धोती बदलवा' दी, इससे बढ़कर और क्या सूक्ष्म- विषय वर्णन हो सकता था। आज के युग में पुष्पा मैत्रेयी के उपन्यास 'चाक' या कि अरुन्धती राय के उपन्यास 'गॉड आफ' स्मालथिंग्स में तो सम्भोग के खुले वर्णन विद्यमान है। किन्तु, वाजपेयी जी के युग में समाज की ऐसी खुली - वृत्ति नैतिक नहीं समझी जाती थी।

उपन्यास में यत्र तत्र आदर्श और सुभाषित वाक्यों के संयोजन से यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि यह सामाजिक उपन्यासों की श्रृंखला में पहला कदम था तथापि इसमें समाज सापेक्षता के गुण विद्यमान थे। वाजपेयी जी के दार्शनिक वाक्य सार्वभौमिक सत्य को स्पष्ट करते है-

'अन्याय को सहन न करके जो जाति मर मिटती है,

मै नही मानता कि उसका विनाश सम्भव है।'

नन्दा इस आदर्श के लिए ही सृजित हुई है । वही पतिता की साधना का सफल प्रतिनिधित्व करती है।

पिपासा -

'पिपासा' का प्रकाशन १९३७ में हुआ। यह उपन्यास बिना कथानक वाला उपन्यास है। बिना कथावस्तु से तात्पर्य है घटना हीन, मात्र पात्रों की मनोस्थिति का चित्रण - अंकन ही इस उपन्यास में हुआ है। वाजपेयी जी तो प्रेम और वासना की भिन्न - भिन्न स्थितियों के चित्रकार है। अब तक के उपन्यासों में इन्हीं मनोभावों को घटना से सम्बद्ध कर पात्रों को संघर्षमय वातावरण में डालकर कथावस्तु का संयोजन किया जाता था।'पिपासा' में 'प्रेम' की व्याख्या मनःस्थिति से अभिव्यक्त की गई है।

कमलनयन एक भावुक कवि है। वह अर्थ की दृष्टि से बेकार है; कुण्ठित है; असन्तुष्ट है, किन्तु, अपने भीतर की तृषा से उत्पीड़ित है। विरक्तिपूर्ण भाषा, कल्पना युक्त दार्शनिक शब्दावलि और अन्तर्मन का असन्तोष उसके आत्मगोपन की पीड़ा भरे छल को उजागर करते है और आत्म प्रवञ्चना से बढ़कर कोई और पाप - छद्म नहीं होता। उसका मित्र है नरेन्द्र- एक भरे पूरे परिवार में दाम्पत्य सुख की अनुभूति का प्रमाण। इस छोटे परिवार की सुख - शान्ति, उसमें एक विचित्र अतृप्ति का कारण बनती है और पिपासा से भरा कमल नयन का कवि मन दमित वासना से ईर्ष्यालु वृत्ति से सोचता है-

'इसी प्रकार का सुख सन्तोषमय जीवन वह चाहता था
यही, बस इतनी ही, उसकी आकांक्षा थी। परन्तु और सब
तो हुआ, यही नहीं हो सका।'

इस कुण्ठा को वह अपने तर्क से दबाना चाहता है। शायद उसे तर्क जनित बौद्धिक विचार से कुछ राहत मिल सके -

'लेकिन, इस जगत में, इस स्थिति में, क्या केवल वही एक है?
यह दारिद्रय, यह परवशता आज सारे जगत के मानव वर्ग
की समस्या बन गई है। तब उसका यह असन्तोष विश्व भर
में फैलकर कितना क्षुद्र हो जाता है। नहीं, कमलनयन जरा भी
दुखी नहीं है। कौन कहता है कि वह अपने जीवन से असंतुष्ट है।'

यह कुण्ठाग्रस्त मानसिकता कमलनयन की आत्म प्रवंचना ही है, आत्मछलना है। आदमी सारे संसार से भाग सकता है स्वयं की सत्ता से नहीं। कमल नयन स्वयं एक उलझा हुआ चरित्र है। कवि सम्मेलन में कविता पढ़ने का उत्साह किस कवि को अच्छा नहीं लगता किन्तु मंच पर पहुंचकर भी

कविता न पढ़ना उसके कुष्ठा - ग्रस्त मन की परिणति है। एक ओर नरेन्द्र से रूपया पाने का उल्लास है दूसरी ओर उसी क्षण मिथ्या आत्माभिमान का जोश उमड़ पड़ता है। 'मूर्तिकार, गायक, चित्रकार और कवि दौलत के गुलाम नहीं होते।' अपनी तृषा और तृष्णा कवि के आत्माभिमान के तले कुचली हुई प्रतीत होती है।

केवल कमल नयन ही क्यों? नरेन्द्र भी आत्मगोपन की वंचना से पीड़ित है। कभी अपनी पत्नी के प्रति कमलनयन के आकर्षण की घुटन अनुभव करता है तो कभी कमलनयन के प्रति करूणा। बदले की तीव्र भावना, कमल को अपमानित करने का ढंग वह भी कितना घृणास्पद - एक वेश्या को शकुन्तला (अपनी पत्नी) बनाकर कमल के सम्मुख रखना उसकी ईर्ष्या, घृणा, कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द्व और वितृष्णा सभी मनोभावों के कुत्सित रूप को प्रस्तुत कर देते हैं। एक अणु विस्फोट! मानवीय चरित्र की कितनी विडम्बना, कितना विद्रोह है? और शकुन्तला ! आत्म भाव के गोपन के नए - नए आयामों को निर्मित करती है! कमलनयन के प्रति उसमें नारीत्व की भूख है, एक अतृप्त यौवन की पिपासा है। इसीलिए उसके हित साधन में कवि सम्मेलन का आयोजन करना है, अध्यापक की नौकरी दिलाना है, वास्तव में उसे निरन्तर अपने निकट रखना है। इतना निकट कि अवसर पाकर एकान्त कक्ष में उसे अपनत्व का समर्पण करना, नोटों का वण्डल थमा देना और अपनी पिपासा को उन्मुक्त करना एक नारीगत कैसा व्यवहार है। कमलनयन भी उतनी ही स्वाभिमानी आत्मीयता से पूछता है 'क्या हो गया है तुम्है शकुन !' तो उसका एक उन्मादी उतर है - 'मास्टर साहब ! मैं तो पागल हो गई हूँ, लेकिन तुम क्यों रोते हो?' यही पिपासा का रहस्य है जो मुखरित हो उठा। और अन्त में शकुन्तला नारी अपने पत्नीत्व की रक्षा कहां कर सकी। नरेन्द्र द्वार पर खड़ा होकर सब सुनता जानता रहा और घुटता रहा। शकुन्तला सब जान कर भी कमलनयन का पक्ष लेती रही। और नरेन्द्र अपने रिवाल्वर से कमल नयन अथवा शकुन्तला अथवा दोनों की हत्या करने की ऊहापोह में आत्मालाप करता रहा। कभी कमल को दोष देकर माफ करता, कभी शकुन्तला को पापिष्ठा कह कर भी शान्त हो जाता। पत्नी का पतन भी क्षमा करना मनोभावों का विकट उद्वेलन प्रकट करता है।

और अन्ततः अपने - अपने मनोभावों से टूटे ये चरित्र पलायन करते है - कमलनयन जेल में, शकुन्तला प्राण विसर्जित करके और नरेन्द्र एक विक्षिप्त व्यक्ति के रूप में सामाजिक अपराध बोध से दबा है। लेखक को इन तीन पात्रों को मनोविश्लेषण करना अभीष्ट था, इनका चरित्र - चित्रण कर पूर्ण व्यक्तित्व प्रदान करना नहीं। चरित्र चित्रण के लिए कमलनयन के भाई कमलाकान्त का परिवार है जो मध्यम वित्त वर्गीय परिवार शैली में उभर कर उठा है। इसमें आत्मीयता करूणा और सहृदयता

जैसी उदात्त भावनाएँ उभर आई है। तथापि लेखक का उद्देश्य मनोभावाभिव्यक्ति को चित्रित करना रहा है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कथा - प्रधानता के स्थान पर इसे मनोविश्लेषण कारी कथा रूप कहना अधिक संगत होगा।

कुल मिलाकर मानव मन की प्रेम विषयक गुत्थियों को उलझा- सुलझा कर वाजपेयी जी ने इस उपन्यास - पिपासा' की रचना की है जिसमें कोई भी तृप्त नहीं हो पाता।

निमंत्रण :

डॉ० देवीशंकर अवस्थी का मन्तव्य है कि भ. प्र. वाजपेयी जी द्वारा १९३० से १९५० के बीच लिखा गया उपन्यास साहित्य उनकी प्रसिद्धि का आधार है। मनोवैज्ञानिक कथाकार के रूप में मध्यम वर्गीय जीवन की मनः स्थितियां इस युग के उपन्यासों में चित्रित कर उन्होंने हिन्दी कथा - साहित्य को निश्चित रूप से आगे बैठाया है। [१]

डॉ. हरदयाल ने निमंत्रण उपन्यास को १९४२ की रचना कहा है किन्तु इसका प्रकाशन १९५० में हुआ है। वस्तुतः १९३७ से १९५० तक वाजपेयी जी ने तीन उपन्यास दिये- दो बहिने (१९४०) गुप्तधन (१९४९/५०) और निमंत्रण (१९५०) में प्रकाश में आए। दो बहिनें एक ही युवक की ओर आकर्षित होकर प्रेमवृत्ति का त्रिकोण बनाती है जिसमें एक बहिन का प्राणान्त हो जाता है। १९४९-५० में दो उपन्यासों का एक साथ प्रकाशन होना इस बात का संकेत है कि इस अवधि में लेखक को विभिन्न मनः स्थितियों के अध्ययन का पर्याप्त अवसर मिला है। इसी अवधि में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलनों , द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामों, फासिस्ट वादी राजनीति, आर्थिक मँहगाई, अंग्रेजी राज्य शासन सता के उत्पीड़न से उत्पन्न स्थिति, देश का विभाजन, स्वतंत्रता प्राप्ति, स्वशासन, और सामाजिक समस्याओं ने वाजपेयी जी के चिन्तन और कथा - संयोजनों के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रदान किया है। किन्तु, उन्होंने मनोविज्ञान की दृष्टि से नारी के अन्तर्मन की काम -भूख और प्रेम-वासना को एक नई मनोवैज्ञानिक भूमि प्रदान करने की चेष्टा इस उपन्यास में की है।

'निमंत्रण' उपन्यास का नायक है, 'संजीवन' समाचार पत्र का संपादक गिरधारी शर्मा ; नायिका है राय बहादुर प्रदयुम्न कुमार की बेटी आधुनिका मालती। गिरधारी शर्मा मालती को ट्यूशन पढाने जाता था और दोनों में प्रतिदिन के मेल- मिलाप से प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो गया। शर्मा ने पत्रकारिता प्रारम्भ की, वह आदर्शवादी है, निर्धन है, गांधी की खादी - स्वदेशी से प्रभावित है, व्यस्त है। कानपुर जैसे व्यस्त श्रमिकों के नगर में ऐसा व्यक्ति मजदूर - आन्दोलन, राष्ट्रीय संघर्ष और ऐसे ही कार्यक्रमों

का केन्द्र बिन्दु है। अतः समाज में वह सम्मानित और श्रद्धा पात्र भी है। मालती के आग्रह भरे उपालम्भ के आकर्षण को शर्मा जी टाल नही सके और उसके घर चले गए। मालती भी उन्हें छोड़ने के लिए उनके घर तक कार से आई। आवागमन का क्रम चला या कि आकर्षण बढ़ता गया। शर्मा जी लोक सम्मान को आघात नहीं पहुचा सकते, वे लोकापवाद से डरते है। मालती शर्मा जी के प्रभाव में खादी के वस्त्र भी पहिन सकती है। शर्मा जी के बीमार बच्चे को देखने के लिए भी जाती है और पत्नी के आग्रह पर रात भी वहीं बिता सकती है। किन्तु रात में जब सब सोए हुए तब मालती तन पर मात्र एक धोती लपेटे लगभग निर्वस्त्र सी शर्मा के कमरे में रतिदान हेतु पहुंच गई। शर्मा जी आकर्षण को भोग नहीं मानते। उन्होंने मालती को डांट दिया। अपने रूप का अपमान सहन न कर वह वेहोश हो गई और शर्मा की पत्नी ने आकर देखा कि मालती भूमि पर बेहोश है और शर्मा उसे पंखा झल रहे है। पत्नीत्व को आघात लगा उनमें तनाव बढ़ना स्वाभाविक था। कुछ समय उपरान्त जब सामान्य स्थिति हुई तो मालती मजदूरों के कार्य में व्यस्त हो गई। कानपुर में स्वदेशी आन्दोलन तेज हुआ, शर्मा जी पकड़े गए, जेल गए। विनायक नाम का युवक जो मालती के भतीजे को ट्यूशन पढ़ाता था और जिसे मालती ने ऐहसास दिलाया था कि उसे ट्यूशन मालती के ही कारण मिली है - विनायक ने इस पर स्वाभिमान से ट्यूशन छोड़ दी थी- उसी विनायक से मालती का परिणय हो रहा है। यह प्रसंग शर्मा जी को अच्छा लगा। वे अपने समाचार पत्र 'संजीवन' का कार्यभार विनायक को सौंपकर निश्चिन्त हो गए। उपन्यास की अधिकारिक कथा का यहीं पर अन्त हो गया।

गौण कथाओं में एक कथा विपिन की है जिसकी पत्नी की चेचक के कारण एक ऑख जाती रही। कुरूपता से वितृष्णा तो हुई ही किन्तु जब उसने अपनी पत्नी को घर के कहार के साथ संभोग रत देख लिया तो कानपुर लौट कर उसने विष खा लिया। वस मर नहीं सका, बचा लिया गया।

दूसरी गौण कथा मालती के भाई ब्रजनाथ की है जिन्होंने वीणा नामक लड़की को भ्रष्ट किया और विवाह न कर उसका परित्याग कर दिया। वीणा के सामने वेश्या का जीवन एक विवशता बनी। वह बूंदी नाम से जानी गई। प्रतिशोध की ज्वाला ने उसमें असीमशक्ति भर दी थी। ब्रजनाथ जब बूंदी बेश्या के यहां गए तो उन्हें वीणा के द्वारा जलालत भुगतनी पड़ी।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यदि शर्मा जी का चरित्र सपाट रूप से विकसित हुआ है तो मालती का चरित्र मनोभावों की ग्रंथियों से भरा पड़ा है। वह स्वैरिणी है - विधार्थी जीवन में महत्वाकांक्षा से ग्रसित प्रथम स्थान पाने के लिए वह प्रो. मुखर्जी को उपकृत कर सकी, ट्यूशन पर विवाहित शर्मा के साथ प्रेमालाप और तन- सम्र्पेण की सीमा तक उसे संकोच न हुआ, डॉ. ललित के साथ उसके

१. डॉ. देवीशकर अवस्थी- हिन्दी साहित्य कोष भाग २ पृ ३७६

सम्बन्ध थे, वह लखनऊ जाकर गर्भपात करा चुकी थी, विवाहिता नारियों के प्रति उसे घृणा थी। वह 'वासनारत कुलटाा' थी या 'तितली'। उसके एक प्रेमी राजेश्वर ने आत्महत्या कर ली थी। ऐसी नारी का, जो भोग - विलास को ही जीवन समझती थी, हृदय परिवर्तन कराकर समाजसेवा, मजदूर सेवा में प्रवृत्त करना वाजपेयी जी पर प्रेमचन्दी प्रभाव रहा है। वस्तुतः वाजपेयी जी भारी मनोविज्ञान की व्यवहारिकता का प्रयोग करते प्रतीत होते है। नारी मनः स्थितियों पर इलाचन्द्र जोशी ने 'पर्दे की रानी' उपन्यास में 'शीला की कहानी' और 'निरंजना की कहानी' लिखकर मनोरोगों की जाँच पड़ताल जारी रखी है- वाजपेयी जी के इस उपन्यास में समाज सापेक्ष मनोविश्लेषण महत्वपूर्ण है।

वाजपेयी जी ने स्वयं कानपुर में अधिकांश जीवन व्यतीत किया है बल्कि प्रारम्भ और अन्त में कानपुर क्षेत्र का जीवन भोगा है- कष्ट में भी आनन्द में भी - अतः कानपुर नगर की विशालता और समस्याओं से उनका निकट का परिचय है। मूलगंज- वेश्यावृत्ति के लिए प्रसिद्ध- से गुजर कर ही वे मनीराम बगिया में समाचार पत्रों के कार्यालयों में जाते होंगे, प्रताप तब वही से निकलता था। तो उन्हें नारी जीवन को निकट से जानने के अनेक अवसर मिले होंगे। इसी स्थान पर जन आन्दोलन भी होते थे, मजदूर संघर्ष होता था जिसे उन्होंने जाना होगा। अतः उनके औपन्यासिक अन्दाज में सिद्धान्त और दर्शन का समावेश होना सरल था। इसी क्षेत्र की नारी को जानकर उनके मन में अनेक प्रश्न उठे होंगे जिनको उन्होंने उपन्यास में दिया है -

> 'वह नारी जो विवाह नहीं करना चाहती, क्यों चाहती है कि लोग
> उसके आन्तरिक जीवन से अनभिज्ञ रहें ? अपने आपको
> समाज की दृष्टि में छिपाने, दृष्टि में ही क्यों, उसकी आलोचना
> से भी अनभिज्ञ रखने का मन्तव्य क्या है ?समाज की अवमानना
> अगर वह सहन नहीं कर सकती तो उसके द्वारा होने वाली सामाजिक
> नीति और आदर्श की उपेक्षा समाज ही क्यों सहन करें ? उसे
> पति की आवश्यकता नही है, इसका यह अभिप्राय तो नही
> कि उसे किसी पुरुष की आवश्यकता नहीं है ।उसे पति नहीं
> मिला है, इसका यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि पति से उसे
> जो कुछ मिलना सम्भव हो सकता था उसे किसी से मिलना
> या पाना अपने लिए असम्भव कर डाला है।' १

पुरुष पात्रों के चित्रण में गिरधारी शर्मा की प्रस्तुति पात्र विशेष की प्रस्तुति नहीं है- वह पूरी व्यवस्था और पूरे समुदाय का प्रतिनिधि पात्र है। पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध श्रमिक समुदाय का विद्रोह है। शर्मा, राष्ट्र की मुक्ति के लिए जो भी प्रयत्नशील हैं, विपन्न है, आदर्श स्वदेशी है वह सब

शर्मा का व्यक्तित्व हैं। वे सामाजिक जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है। वे मालती की लालसाओं को भी नही स्वीकारते और कुण्ठा में जीते है यद्यपि यह लालसा की कहानी उपन्यास की अधिकारिक कथा है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा था 'कामना संगे लालसा पार्थक्य' कामना का स्तर लालसा से ऊपर है। और यह सम्पूर्ण उपन्यास लालसा केन्द्रित है। क्या इस उपन्यास से यह ध्वनित नही होता या कि स्वयं लेखक का अभिप्राय है कि विवाहित होते हुए भी पत्नी के अलावा पुरुष की एक प्रेमिका भी होना चाहिए। उनका मन्तव्य रेणु (गिरधारी शर्मा की पत्नी) के कथन से स्पष्टतः अभिव्यक्त हो उठता है-

"कहते थे प्रेयसी, प्रेयसी तो देवी होती है।वह अर्चना की वस्तु है।उसके साथ कहीं व्याह हो सकता है? विवाह तो देवी को नारी बनाडालता है। विवाह तो शरीर के उन स्थूल व्यापारों से सम्बद्ध है, जिनसे गन्ध आती है- जो बासी पड़ते - पड़ते अन्त में सड़ जाते हैं। किन्तु प्रेयसी तो प्राणेश्वरी होती है। विवाह तो भूख शान्ति का एक मार्ग है। किन्तु तृष्णा जो अजर होती है, उसकी शान्ति तो प्रेयसी ही करती है, अपने आत्मदान से।"१

उपन्यास में यही प्रेयसी - भाव सर्वत्र जीवन्त है। एक ही स्त्री क्यों पत्नी और प्रेमिका के रूप में दो भिन्न पुरुषों को सन्तुष्ट करती है?एक ओर प्रेमिका के रूप में दो भिन्न पुरुषों को सन्तुष्ट करती है वह ?एक ओर सामाजिक मर्यादा के नाम पर विवाह का समर्थन और दूसरी ओर मानसिक - सौन्दर्य - पूजा के नाम पर प्रेयसी रखने का भी समर्थन क्या दोहरे परस्पर विरोधी मानदण्ड नहीं प्रस्तुत करता?२

'निमंत्रण' अंग्रेजी शासन के समाप्त होने पर स्वाधीनता के बाद भारतीय अर्थनीति के उदय काल का भी चित्रण है। लेखक ने कोई रीति कालीन नृत्य - गान और कला विकास की सामाजिक स्थिति की चर्चा नहीं की अपितु राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य और अन्तर्राष्ट्रीय जगत की आर्थिक नीतियों और भारतीय विकास का बोध कराते हुए पूंजीवादी तत्कालीन समाज की भर्त्सना की है। मजदूरों की छटनी हो या कि ताला बन्दी, भुखमरी हो या बेरोजगारी, क्योंकि ये सब लेखक का भोग्य रहा है, अतः स्वाभाविक रूप से वर्णित है। इस पूंजीवादी व्यवस्था का परिणाम है- मालती का स्वैराचार, बूँदी का वेश्यावृत्ति अपनाना अथवा खाद्यान्न के होते हुए भी पूजीवादी व्यवस्था में भुखमरी का होना अर्थात् समाज में शोषक का अभिजात्य और शोषित की निर्धनता का निरन्तर द्वन्द्व बना रहना, भारतीय सन्दर्भ में आज

१ निमंत्रण पृ. ५१

भी प्रासंगिक है। पूंजीवादी व्यवस्था का एक रूप है, फ्रायड वादी जीवन में यौनाचार जिसके सामाजिक दुष्परिणाम आज भी भारतीय समाज को दूषित बनाए हुए हैं। लेखक स्वयं कानपुर के वेश्यावृत्ति के इलाके से भली भांति परिचित है और भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में नारियों को सम्मान - दृष्टि से देखता - समझता है अतः उसका संस्कारगत व्यक्तित्व पूंजीगत फ्रायडवादी व्यवस्था को किसी भी दशा में समाज- लाभ के लिए नहीं स्वीकार कर सकता।

पात्रों के विकास की दृष्टि से सभी पात्रों का चरित्र सपाट है। नायक शर्मा का चरित्र संघर्षशील, परोपकारी राष्ट्रीय कार्यकर्ता, विचारवान व्यक्ति का चरित्र है- आदर्श चरित्र, किन्तु पूर्व से गढ़ा गया प्रतीत होता है। शर्मा के चरित्र में पूर्णिमा (मालती की भाभी) का मन्तव्य है-

> "अगर वह किसी को प्यार करते हैं तो कथनों तथा भावों
> द्वारा ही नहीं, व्यवहारिक रूप में भी सिद्ध करना चाहते
> हैं कि वे उससे घृणा करते हैं।"

और नायिका मालती का चरित्र इस योग्य है भी परन्तु, जब वह विनायक जैसे लेखक से विवाह कर रही होती है तो यही शर्मा अपना समाचार पत्र और प्रेस- प्रकाशन उसे सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है। विनायक संकोची है, प्रगतिशील है और मन का शुद्ध किन्तु विचारों से विप्लवी है- वह मार्क्सवादी है। शेष पात्र सामान्य है। कोई विशेष प्रभाव वे नहीं छोड़ते।

निमंत्रण उपन्यास मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हृदय - बुद्धि, नीति और जैविकता तथा भावना और कर्तव्य के द्वन्द्वों और संघर्षों का उपन्यास है। कुल मिलाकर निमंत्रण उपन्यास ने नए - नए आयाम निर्धारित करने में सहायता की है। मनुष्य की प्रेम मूलक व्यक्तिगत जीवन चरित्र से ऊपर उठकर अब उनके उपन्यासों की दिशा समाज और समाज से जुड़ी हुई कतिपय समस्याओं की ओर इंगित करती है जिससे मूल भावना समाप्त नही होती। कहीं - कहीं ऐसा भी प्रतीत होता है कि राजनीति के सिद्धान्तों की व्यवहारिक पुष्टि, पात्रों के चरित्र से अभिव्यक्त होकर, वह राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की रचना करने की ओर उन्मुख है। अन्त में वाजपेयी जी का यह उपन्यास 'निमंत्रण' मनोवैज्ञानिक उपन्यास- के सोपानों में एक आवश्यक कड़ी है।

गुप्तधन

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने जयशंकर प्रसाद की कामना की भाँति 'गुप्तधन' भी एक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान तथा दर्शन की मिश्रित कृति हिन्दी उपन्यास - जगत को प्रदान की है। दार्शनिक अर्थ निकालने की चेष्टा करने वाले समीक्षकों को सर्वत्र दर्शन न मिलने पर उन्हें निराश अवश्य होना पड़ा

१. निमंत्रण पृ. २२६
२. रामरतन भटनागर निमंत्रण - कथावस्तु की समीक्षा।

हो अथवा यह उपन्यास भी बहु प्रचलित न हो पाया हो तथापि इण्टरमीडिएट कक्षाओं में सहायक अध्ययन के लिए उ. प्र. बोर्ड द्वारा इसे १९५२ के बाद पाठ्यक्रम में निर्धारित अवश्य किया गया था। इससे यह प्रतीत होता है कि इसमें ऐसी कथा संयोजित अवश्य है जिसे तरुण युवाओं को पढ़ाना आवश्यक समझा गया ।

'गुप्तधन' में प्रतीक पात्रों द्वारा संयोजित घटनाक्रम पूर्ण रूप से चरित्र प्रधान है। आचार्य गौरी शंकर दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर है। वे साधन और साध्य दोनों ही की पवित्रता में विश्वास करने वाले गांधीवादी विचारक हैं। पत्नी के दिवंगत होने पर वे जोधा को प्रबोध करते है- 'हिमालय भी कभी रोता है?' पर जोधा क्या करे जब आचार्य गौरीशंकर ही अपनी पत्नी को मुखाग्नि देने से इन्कार कर देते है, तब केवल जोधा ही नहीं पाठक भी उस रहस्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठते हैं। क्या उत्तर है इस प्रश्न का जो जोधा ने उठाया है - 'क्यों गुरुदेव ने मां के साथ ऐसा व्यवहार किया?' उपन्यास का पाठक भी तो यही प्रश्न पूछता है। उत्तर भी उपन्यास में ही है।

सत्य प्रकाश वेदप्रकाश का पुत्र है किन्तु उसके निसन्तान चाचा ज्ञान प्रकाश ने उसे गोद लिया है। ज्ञान प्रकाश उद्योगपति है और वेद प्रकाश एक सामान्य व्यक्ति। किन्तु, सत्य प्रकाश की मां करुणा- अपने हृदय पर पत्थर रखकर सत्य को ज्ञान प्रकाश की पत्नी निसन्तान मायादेवी को मात्र इसलिए देने में संकोच नही करती कि वह पढ़लिख कर योग्य बन जाएगा। दूसरी ओर विमाता मायावती में स्नेह का अंकुर तक नही फूटता। संस्कार वश सत्य प्रकाश ज्ञानप्रकाश के उद्योगी श्रमिकों के प्रति सहानुभूति दिखाता है लेकिन प्रतिबन्धित किए जाने पर वही सत्य प्रकाश आत्म- कुण्ठा से उबर नहीं पाता।

सत्य प्रकाश ने तलाक विषयक प्रतियोगिता में तलाक का समर्थन किया है या कि भगवती प्रसाद वाजपेयी ने समाज में प्रचलित तलाक प्रथा की समस्या को विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत किया है। इसी वाद विवाद से उस रहस्य का पर्दा उठता है जिसके लिए जिज्ञासु पाठक जानना चाहता था "गौरीशंकर ने अपनी पत्नी का दाहसंस्कार क्यों नहीं किया?"

गौरीशंकर की पत्नी ने आत्म हत्या की थी क्यों? क्योंकि गौरीशंकर प्रोफेसर होकर भी पत्नी के आचरण पर सन्देह करते रहे पर वे यह निश्चित करने में असमर्थ थे कि उनकी पत्नी किसी सन्यासी से वैध अवैध सम्बन्ध रखती थी! सन्देह का कारण क्या इतना पर्याप्त था कि वह उस साधू- सन्यासी को आभिष भोजन बना कर खिलाती थी! एक ओर चेतना के पिता अपनी पत्नी पर सन्देह कर उसे निश्चित न कर पाने की द्विधा से ग्रस्त हैं, दूसरी ओर उन्हीं की बेटी सत्य प्रकाश के प्रति आकर्षित

और स्नेहपाश में आबद्ध है। प्रायश्चित भाव से प्रपीड़ित गौरीशंकर सत्य के सेवा व्रत से स्वास्थ्य लाभ करते हैं और सत्य- चेतना और अधिक निकट आ जाते है।

वाजपेयी जी की वृत्ति उपन्यासों को सुखान्त बनाने की ही रहती है अतः यह भी सुखान्त है। ज्ञान प्रकाश सत्य जैसे बेटे (दत्तक ही सही) के सद्गुणों से आत्म- तृप्त है- मन्मथ (ज्ञान का साला) को दण्ड देने से भी। गौरीशंकर ने अपनी पुत्री चेतना का विवाह सत्य से कर दिया और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी भी उसे बना दिया। जोधा को भी अपनी भांजी की आत्महत्या के रहस्य को जानकर जो क्षोभ था वह चेतना - सत्य के परिणय में तिरोहित हो गया। और यह विचार प्रधान कहानी केवल सिद्धान्त चर्चा में ही समाप्त हो गई।

'गुप्तधन' में सर्वत्र प्रतीकात्मक सम्बन्धों की निरन्तरता को खोजना व्यर्थ का प्रयास हैं। किन्तु, कहीं न कहीं प्रकरण में यह प्रतीकात्मक बिम्ब विद्यमान रहते हैं। उपन्यास में आए नाम प्रतीताकात्मक है- गुरुदेव गौरीशंकर अपने नाम के अनुरूप प्रारम्भ से अन्त तक गम्भीर विशाल व्यक्तित्व के धनी ही बने रहते हैं। सत्य, वेद, ज्ञान, विनय, मन्मथ तथा चेतना , माया, करूणा साधना प्रीति वत्सला सभी पुरुष - स्त्रीपात्र मनोवृत्तियों तथा चितवृतियों के स्वरूप ही है और नामानुकूल उनका आचरण भी लेखक ने हमें उसी प्रकार दिया है तथापि कथासर्वत्र, सांगरूपक नहीं है। यद्यपि अधिकांशतः हम आरोपित कर बिम्बात्मक सौन्दर्य की रचना कर लेते हैं।

माया का चरित्र मायावत् ही है। वह न तो विचार में सत्य को अपनाती है और न लोक - व्यवहार में ही। लेखक ने ऐसा ही चरित्र माया के व्यक्तित्व में रचा है। सत्य के लिए उसका कथन है, "न वह वैसा पुत्र है न मैं उसकी वैसी मां हूं। मन को सम्भालने की बात दूसरी है।' क्योंकि माया की अपनी कोई सन्तान ही नहीं, सत्य प्रकाश तो दत्तक पुत्र है। लेकिन दार्शनिक रूप में भी माया कभी सत्य को सह नहीं सकती। दूसरी ओर वात्सल्य से परिपूर्ण करुणा अपने समस्त अन्तर्द्वन्द्व को कुचल कर यही कहती है- "सत्य केवल मेरा है। मैने ही जन्मा है उसे। मेरी आत्मा का सारा रस लेकर वह पैदा हुआ है। मेरी देह में, मेरे रक्त में, मेरी नस - नस में, मेरे मानस लोक से जो कुछ भी आनन्द, राग- विराग और क्षोभ - मोह है, सब इसी एक सत्य में पुंजीभूत है।'

वाजपेयी जी के समस्त उपन्यासों में एक आदर्शवादी छांह होती है वह 'गुप्तधन' में भी है। आदर्श जहां ऊंचे होते है वहां यथार्थ की भूमि नीची व तंग होती है। मध्यम वर्ग का संस्कार - मन परम्पराओं के मोह में रहता है जहां भावावेग में आत्महत्या भी हो जाती है। वाजपेयी जी इसी परम्परागत संस्कार- मन की स्थिति के चित्रकार हैं। वे प्रेम के चित्रकार है - ऐसे प्रेम के जो आदर्श को सम्भाल

सके- रोगी प्रेम के नहीं। 'गुप्तधन' ऐसे ही प्रेमधन को गुप्त नहीं रहने देता। प्रकाश धन - सत्य धन बना देता है।

विश्वास का बल

विश्वास का बल १९५६ में प्रकाश में आया। उच्च मानव चरित्रों की दुर्बलताओं के सामाजिक बोध की प्रस्तुति इस उपन्यास का भव्य उद्देश्य है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी ने भ. प्र. वाजपेयी के उपन्यासों को 'एकान्तिक कला कहा है।' एक आस्था विशेष, एक घटना विशेष, किसी मनुष्य विशेष अथवा उसकी मानसिक प्रकृति विशेष को उसके आसपास की चौहद्दी से निकालकर और उस टुकड़े को असाधारण योग्यता के साथ सजाकर दर्शक या पाठक के सामने प्रस्तुत कर देना वाजपेयी जी की कला का सिद्धहस्त नमूना है। 'विश्वास का बल' उपन्यास उनकी आस्था और विश्वास का ज्वलंत उदाहरण है। लेखक का मत है कि जहां विश्वास दृढ़ता और धैर्य तीनों की त्रिवेणी प्रवाहित होती है वहां सफलता का रहस्य सहज में हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है।

'विश्वास का बल' हमें सफलता का रहस्य बताता है और विश्वासघात और सामाजिक छल हमें नास्तिक बना देता है।१ उपन्यास का पात्र विहारी कहता है कि -

"अपने को धोखा देने वाला व्यक्ति समाज को भी धोखा देता है और समाज के साथ विश्वासघात करने वाला व्यक्ति दुस्साहसी और नास्तिक होता है।'

वाजपेयी जी वर्तमान शिक्षा- व्यवस्था को दूषित मानते है और समाज में होने वाले उत्पातों में दूषित शिक्षा- व्यवस्था उत्तरदायी है। गुरु - शिष्य के सम्बन्ध मात्र औपचारिक हैं। वेतन- भोगी गुरु और अर्थ - केन्द्रित शिष्य से कैसे आदर्श समाज की अपेक्षा की जा सकती है।

'क्योंकि आज के अध्यापक तो बिल्कुल उसी हैसियत के रह गए हैं जैसे मंदिर, मस्जिद, किला या ऐतिहासिक स्थानों पर दर्शकों या यात्रियों को इधर- उधर घुमा कर पैसा ऐंठने वाला गाइड।'

'विश्वास का बल' उपन्यास कतिपय जीवनादर्शों को प्रस्तुत करता है जो समाज में आवश्यक है। यों तो वाजपेयी जी नारी जीवन की दुलर्भ गुत्थियों को सुलझाते प्रतीत होते है, प्रगतिवादी विचारों से अग्रगामी होते तथापि जीवन मूल्यों के पुरातन आदर्श को जो शास्वत है उन्हें छोड़ नहीं पाते क्योंकि वे संस्कृति की धरोहर है।

समाज में नारी के सम्मान के प्रबल - समर्थक वाजपेयी जी उसे पतिपरायणता के आदर्श से गिरने नहीं देते। पूर्व के उपन्यासों में भले ही पत्नी के होते हुए भी प्रेयसी की महत्ता स्वीकारने वाले वाजपेयी जी प्रेयसी को कभी पत्नी का पद नहीं देते। साथ ही पत्नी भी पति को परमेश्वर ही मानती है- लक्ष्मी की ऐसी ही एक स्वीकारोक्ति है-

'यह निखिल देह -यष्टि, शिरा - शिरा, स्नायु, रन्ध्र, लोम, लोम, अस्थि- पंजर, रक्त, जन्म- जन्मान्तर, इहलोक, - परलोक - भूलोक - भुवलोक, स्वर्ग - अपवर्ग मुक्ति निलय - विलय गति - प्रगति मेरे लिये सब वही है।" इतने आयामों के बाद अब बचा क्या जो नारी को अलग चाहिए। रहा विवाह अवसर पर लड़की - लड़के की परस्पर सहमति उनकी अपनी जांच पड़ताल द्वारा निर्वाचन पद्धति, वह सिने संस्कृति के अधिक निकट हैं। ही मानती रहती है लक्ष्मी की ऐसी ही एक स्वीकारोक्ति - वाजपेयी जी इसे नही स्वीकारते -

> "मैं नही मानता कि पति - निर्वाचन की आधुनिक पद्धति हमारे राष्ट्र
> का नव निर्माण करने में सहायक होगी ।"

वाजपेयी जी का यह कृति उनके आदर्शों, सिद्धान्तों और जीवन के अनुभवों का एक विचारपूर्ण अभिलेख है। चाहे वह शिक्षा विषयक हो या राष्ट्र विषयक ; चाहे कला विषयक हो या समाज - राजनीति परक ! इन विचारों का गुम्फन लेखक ने पारिवारिक कथा - सूत्रों में प्रेम - कर्तव्य और दायित्वों के दायरे में संजोया है।

कलाकार - कला से अविच्छिन्न है। कला की उपेक्षा - कलाकार की उपेक्षा है। वैसे भी कलाकार दीन हीन जीवन यापन करता है। जीवन का हलाहल पीकर अमृतोफल देता है- ज्ञानबाबू कहते हैं-

> "जीवन की सारी कटुता पीकर तो कलाकार जीता है। हलाहल
> पीकर भी हँसता गाता है। लांछना, प्रवंचना, अवमानना सहन करता
> हुआ मुस्कुराता है .... परन्तु इन सब अभावो के होते हुए भी वह
> अपने देश और विश्व के लिए जो कुछ दे जाता है उसका महत्व तुम्हारी
> दृष्टि में कुछ भी नहीं ?"

वाजपेयी जी अपनी चिन्तता में देश और राष्ट्र, नागरिक और भावी पीढ़ी के लिए सदैव चिन्तित नजर आते हैं। उनके अनुसार समाज और राष्ट्र का निर्माण॰ चरित्र और नैतिक मूल्यों पर आधारित है। इनका अभाव समाज का पराभव है। मुरारी कहता है-

१. डॉ. हनुमान प्रसाद

"राष्ट्र के निर्माण की इस पावन बेला में सबसे अधिक आवश्यक है चरित्र गठन, सबसे अधिक वांछनीय है नैतिक विकास। पाप को मैं नैतिक विवशता मानने के लिये कभी तैयार नहीं हो सकता।"

वर्ष १९५० से ५५ तक का पांच वर्ष का समय भारतीय गणराज्य के निर्वाचन का वर्ष था, राष्ट्रीय पर्व का वर्ष था।आज की भांति संसद हंगामा नहीं थी। राष्ट्रीय गरिमा के अहम् मसले थे जिनपर गीता के कर्मवाद की छाया लोप नहीं हुई थी। गांधी - विनोवा के गीता कर्म क्षेत्र में राजनीति में दम्भ का समावेश नहीं हुआ था। - कर्म की फल कामना पर श्रेष्ठता बनी हुई थी। मुरारी स्वयं इसका उदाहरण प्रस्तुत करता है-

" मैं अपने कर्तव्य का पालन जीवन को अंतिम सांस तक करता रहूंगा।
इस बात की बिलकुल परवाह नही करूँगा कि लोग मुझे क्या कहेगें ?"

"सर्वधर्म समभावके विचार के लिए गांधी ने प्राणों की आहुति दी। ' ईश्वर अल्ला तेरे नाम' को गाते - गाते गांधी चला गया। कृष्ण और ख्रीष्ट की उपासना में क्या अन्तर है है? गांधी ने अहिंसा ईसाम्अमन से ही सीखी थी मात्र नाम बदल देने से तो ईश्वर नही बदलता। इस विचार को प्रतिपादित किया है - मिस हनीबाल ने।

"हमारे क्रिश्चियन धर्म से तुमको कोई दिलचस्पी भी न हो तो हिन्दुओं में मैं जानती हूं ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है, जो यह मानते हैं कि भगवान तो एक ही है, नाम अलग अलग है जो तुम्हारे लार्ड कृष्णा है वही मेरे महाप्रभु जेसस क्राइस्ट है।'

बल्कि, वाजपेयी जी का विश्वास बल है कि 'विश्वास किसी एक धर्म, युग और सम्प्रदाय की थाती नही, वह तो चिर युगीन जन जन के प्रेम - मिलन और सौरव्य का मूलाधार है।"

विश्वास का बल समाप्त होते ही समाज की शक्ति भी क्षीण होने लगती है, वह अन्धकार की ओर अग्रसर हो जाता है।आस्थायें मानव जीवन की कसौटी है। जब आस्थायें घायल होती है, उपेक्षित होती है, उनका अस्तित्व क्षीण होने लगता है, वही से दुराग्रह और अनीति का वातावरण स्रजित होता है जो समाज के लिए और मानव जाति के लिए अभिशाप बन जाता है। राजीव इसी विचार को लक्ष्य कर लेखक के मन्तव्य को वन्दना पर प्रकट करता है।

'विश्वास बहुत बड़ी चीज है, वन्दना !आस्थायें तोड़ना
रत्न हैं। किन्तु, जरा सोचो, जब आस्थाएँ न रहेगी
तब जीवन में क्या रह जायगा ? और अस्तित्व का मूल्य क्या होगा ?'

उपर्युक्त विचार मंथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'विश्वास का बल' उपन्यास वाजपेयी जी के विचारों का प्रदेय है। वे इस युग के ऐसे कथा शिल्पी है जो सत्य के उद्घाटन करने में और सामाजिक विश्रृंखल जीवन को चित्रित करने में कथा सृजन के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने उपर्युक्त को लक्ष्य कर उनके विषय में अभिमत व्यक्त किया है-

> "चारित्रिक और मनोवैज्ञानिक वैचित्रय का उद्घाटन उनकी
> नवीन आख्यायिकाओं में प्रधानता पाया जा रहा
> है। दुःख और कष्ट सहन उनके मुख्य आकर्षण हैं।
> उनकी कलाओं के निर्माण में इन दोनों का प्रधान स्थान है।
> असाधारणता की ओर प्रवृत्त होने के कारण दुःख और
> कष्ट - सहिष्णुता वाले चरित्र भी वे उच्च और
> मध्यमवर्गीय समाज से चुनते हैं। वाजपेयी जी का
> विवेक पर्याप्त पुष्ट हैं और जहां तक निर्माण की सुघरता
> का प्रश्न है हिन्दी कथा साहित्य में वे निश्चय ही
> सबसे आगे हैं।"

अविकल अक्षुण्य विद्या है जो जीवन के अधिकाधिक निकट पहुंचकर नव - नव प्राण संचार ही नहीं करती है, उसकी सतत प्रबुद्ध और अक्षरर्थशील बनाती रहती है। इसीलिए जीवन का जैसा सम्पूर्ण उद्घाटन उपन्यास में सम्भव है, वैसा अन्यत्र नही। यह केवल प्रत्यक्ष संवेगों तक ही सीमित रहता है।"

वाजपेयी जी उपन्यासकार के रूप में पहले मानवतावादी है बाद में व्यक्तिवादी। व्यक्ति को उन्होंने अपने चिन्तन का केन्द्र विन्दु बनाया है। किसी 'वाद' से प्रेरित होकर उन्होंने अपने ग्रन्थों की रचना नहीं की।

वाजपेयी जी का मानना था कि 'मैं सत्य के सौन्दर्य का पुजारी हूँ, मधु का नहीं, कटु सत्य का भी। सत्य का ही दर्शन, चिन्तन और मन्थर में मैं साहित्य में करना और देखना चाहता हूँ।'

'वाजपेयी जी वर्तमान में नारी - शोषण और उत्पीड़न से प्रभावित हुए बिना नही रह सके। भारतीय नारी के अभिशप्त जीवन पर उन्होंने व्यापक विचार किया है'। इसके भी दो कारण स्पष्ट है - नारी जाति में शिक्षा का अभाव और आर्थिक रूप से आश्रित बने रहना। इसीलिए वह अभिशप्त जीवन यापन करती है।"

शरतचन्द्र के उपन्यासों की नायिकाओं की भांति वाजपेयी जी की नारियां दो वर्गों में है - पृथक वर्ग की संघर्ष रत है नन्दा और द्वितीय वर्ग की समानता का दावा करने वाली मालती है । मालती का कथन है -

> 'मैं पुरूषों के बीच रहती हूँ - उनसे स्वतंत्रता पूर्वक मिलती हूँ।बस इसलिए मैं चरित्रहीन हूँ? और घरों के अन्दर सीता और सावित्री जैसी सती, शकुन्तला और उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्रियों को पालते हुए भी जो लोग करेप्ट प्रॉस्टीट्यूट (रखेल वैश्य) रखते है वे क्या है ?१

कुल मिलाकर वाजपेयी जी के पात्र प्रेम और यौन (सैक्स) की भावनाओं से पीड़ित रहते है। किन्तु, कुल मिलाकर वाजपेयी जी के पात्र रोचक और प्रभाव वाले हैं।

१. डा. त्रिलोकी नारायण दीक्षित - वही

****

सूनी राह :

'सूनी राह' भी १९५६ में प्रकाशित उच्च मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के समाज का 'सच्चा और निर्व्याज' चित्रांकन है। इस उपन्यास का नायक निखिल है, नायिका करूणा है; करूणा के पिता गोपाल बाबू एडवोकेट हैं; इनके अतिरिक्त कामता बाबू निखिल के चाचा है, प्रोफेसर वैशम्पायन और अविनाश उर्फ पागलबाबा है नौकर दीनू और करुणा के चाचा रमेश है। कहानी का आधार उच्छृंखल यौवनावेगवती करुणा का निखिल के प्रति आकर्षण और अपने पति सत्याचरण का तिरस्कार है। एक शब्द में 'परकीया प्रणय' की यह कथा है। नायिका करुणा अपने पति सत्याचरण से असन्तुष्ट होकर रमेश को पढ़ाने आने वाले निखिल के सौन्दर्य और स्वस्थ शरीर पर मुग्ध है- इस सीमा तक मुग्ध है कि उसे वह अपने पति का परित्याग कर भी अपनाना चाहती है। गोपाल बाबू की पत्नी और करुणा की मां दिवंगत हो चुकी है, अतः गोपाल बाबू अपनी पूर्व प्रेयसि अमिता का स्मरण करते है। यह वही अमिता है जिसे कौमार्यावस्था में गर्भवती कर गोपाल बाबू ने उसका परित्याग कर दिया था। और अविनाश (पागल बाबा बना हुआ) उनके प्रेम की जारज संतान है। गोपाल बाबू को अपने ही मित्र प्रो. वैशाम्पायन के घर अविनाश को देखकर अपार आश्चर्य होने लगता है एवं उन्हें आत्मग्लानि तथा पश्चाताप का अनुभव होता है। वे अमिता को अपने घर ले आते हैं।

कामता बाबू ने निखिल के पिता (अपने भाई) की सम्पूर्ण सम्पत्ति छल से प्राप्त कर ली है- वे निखिल का विवाह अन्यत्र भी करना चाहते हैं किन्तु, निखिल के स्वीकार न करने पर उसे घर से निकाल देते है। दूसरी ओर पागल बाबा द्वारा कामता नाथ को उनके छल - छद्म के लिए धिक्कारने पर वे रुग्ण होकर शीघ्र मर जाते हैं।

अमिता के पूर्व - जीवन तथा प्रेम - प्रसंग को जान कर करुणा और दुस्साहस के साथ निखिल को अपनाने का (अपने पति का सत्याचरण के होते हुए भी) प्रयास करती है। सत्याचरण गबन के मामले में पुलिस की हिरासत में हैं।१

करुणा एक विलासी जीवन की आदी स्वच्छद रमणी हैं। वह विचार करती है कि निखिल जैसा आदर्शवादी और निर्धन व्यक्ति उसकी कामनाएँ पूरी नहीं कर पायेगा - करुणा की वितृष्णा बढ़ जाती है। इसके साथ ही जब उसे ज्ञात होता है कि 'अपराध बोध' पर मनोवैज्ञानिक शोध करने हेतु ही सत्याचरण ने गबन किया, जेल गए, निखिल - करुणा का प्रणय जानते हुए भी करुणा को आशीर्वाद दिया, उसे क्षमाकर दिया, तब ही करुणा अपने पति की विशाल हृदयता को जान सकी और उसकी

१. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी।

महत्ता में थोथे आदर्शवादी निखिल को छोड़ उसके साथ बैठकर चली गई । यद्यपि सम्पूर्ण उपन्यास में सत्याचरण के शोधकार्य का कोई विवरण नहीं है ।

सम्पूर्ण कथानक में अधिकारिक कथा से अधिक सशक्त गौण कथा - गोपाल बाबू - अमिता-अविनाश की कथा है जो पाठक पर प्रभाव छोड़ देती है और मुख्य कथा निखिल - करुणा प्रसंग एक सपाट कथा प्रतीत होती है । कहीं - कहीं पर कथा में जो अस्वाभाविक प्रसंग है वे रसास्वादन में एक व्याघात उत्पन्न करते हैं। कामता बाबू की मृत्यु असहज और अनावश्यक प्रतीत होती है। सत्याचरण को अन्त में चमत्कारिक रहस्योद्घाटन से सच्चरित्र और प्रयोग करने वाला व्यक्तित्व बनाना भी उपन्यास के मर्म को घटा देता है क्योंकि उसके साथ पूर्व में कोई सामाजिक शोध परक अपराध बोध का न तो कोई प्रयोग किया जाना और न ही विवरण देना आकस्मिकता को उत्पन्न कर सामाजिकता और सहजता के तत्व को नष्ट कर देता है ।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से निखिल का सृजन आदर्श पात्र के रुप में किया गया है जो निर्धनता के होते हुए भी आत्म सम्मान से समझौता नहीं करता । इतने अंश को छोड़कर कोरी भावुकता और थोथे आदर्श को यथार्थ की जटिल भूमि का संघर्ष उपन्यास में नहीं मिलता । करुणा जहां उग्र - कठोर स्वभाव की है वहीं वह चंचल और पर पुरुष भोगी भी हो सकती है और जब उसे विश्वास हो जाता है कि निखिल के साथ उसे आधुनिक सभी सुख सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो सकती तो एक झटके में सारे आकर्षण को तिलाँजलि दे देती है । गोपाल बाबू दंभी और अपने अहं के शिकार है जिनका व्यसन लम्पटता है, उनकी विवशता है कि वे अपने विवाह पूर्व प्रेम प्रसंग की परिणति पुत्र अविनाश (पागल बाबा) के प्रति अनुताप करते है किन्तु , उसकी मां को पुन: पत्नी का पद देकर भूल- सुधार नहीं अपितु पत्नी के अभाव को स्त्री से पूरा मात्र करते हैं ।

'सूनी राह' एक व्यंग्यात्मक उपन्यास कहा जा सकता है ।[1] यह उपन्यास घटना प्रधान न होकर चरित्र प्रधान है इसीलिए गोपाल - अमिता की कथा गौण होते हुए भी प्रमुख प्रतीत होती है और निखिल - करुणा की अधिकारिक कथा भी आकर्षित नहीं कर पाती । निखिल एक मेरुदण्ड हीन भावुक, उन्मन और कापुरुष प्रकृति का विचित्र व्यक्ति है । वह 'सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक शान्ति, मर्यादा और नैतिकता' से लड़ने को उद्यत है ।'अपनी कामनाओं को सदा नंगा भूखा रखकर यह सोच लेना कि मैं बहुत बड़ा त्याग कर रहा हूँ' कोरा पाखण्ड है ।[2] एक तरफ वह प्रेम और मर्यादा को परस्पर विरोधी समझता है[3] और वही कहता है, 'प्रेम की भी एक लाज होती है, उसकी भी एक मर्यादा है ।[4] निखिल एक दम्भ पूर्ण व्यक्ति नही अपितु तर्क पूर्ण वकील का रूप है । करूणा के

सत्याचरण के साथ चले जाने पर निखिल के प्रति सहानुभूति के स्थान पर घृणा व्यंजित होने लगती है जिसे प्लेटो की कामेडी की परिभाषा से सत्यापित किया जा सकता है। निखिल 'दैव की निष्पौरुष छद्म क्रीड़ा '[५] का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

पागल स्वामी स्वयं लेखक की प्रतिकृति है। वह अटपटी वाक्यवलि से अपना आक्रोश तो व्यक्त करता ही है पर वस्तुतः सहजवाणी में वह उपन्यासकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादक ही है।' वह छापामार बोली बोलता है।' उसकी नजर पैनी है। एक ही नजर में वह किसी भी मनुष्य का चरित्र भांप लेता है

संक्षेप में सम्पूर्ण उपन्यास मानव मन की गुत्थियों को और दमित वासनाओं को मुखर करने का व्यंग्यात्मक उपन्यास है।

उनसे न कहना -

'उनसे न कहना' उपन्यास का रचना काल १९५८ है किन्तु १९६० में यह प्रकाशन में आई। प्रेमपथ के रचनाकाल से कवि एवं उपन्यासकार भगवती प्रसाद वाजपेयी के जीवन में भी अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। इस समय वे सुख- दुख, इच्छा आंकाक्षा, आदर्श और यथार्थ के अद्भुत संघर्ष से जूझ रहे थे। प्रेमचन्दोतर उपन्यास रचना में यह संघर्ष पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

'उनसे न कहना' शीर्षक ही इस बात का द्योतक है कि कथानक में आत्मगोपन का भाव उसे कहीं न कहीं एक मनोवैज्ञानिक भूमि प्रदान कर रहा है। यथार्थ और आदर्श तो वाजपेयी जी की रचना के दो प्राणतत्व है - वे समाज के नैत्यिक व्यवहार के मूक दर्शक नही है अतएव उसके यथातथ्य विवेचन को प्रस्तुत किया जाना निश्चित करते है, किन्तु समाज को क्या दिशा निर्देशन करना है यह उनका धर्म है। इतने पर भी न तो यथार्थ के ऊपर आदर्श की उपदेशात्मक वृत्ति प्रतीत होने पाती है और न ही आदर्श की कल्पना में यथार्थ का कुत्सित चित्र ही सबकुछ हो पाता है। किन्तु , इस उपन्यास को मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहना अधिक संगत होगा।

'उनसे न कहना' उपन्यास ग्राम्य एवं नागरीय जीवन की समानान्तर झाँकी प्रस्तुत करता है। वाजपेयी जी का यथार्थ जीवन, संघर्षपूर्ण जीविका उपार्जन और निम्न मध्यवर्गीय समाज की संवेदनाएँ कानपुर नगर से गहनतम रूप से जुड़ी है। अतः इस उपन्यास में भी कानपुर के कीर्तिदेव के एक मात्र पुत्र विजय देव शर्मा की कथा है। माता कल्याणी और पिता कीर्तिदेव के अभिजात्य अहम् का एक दुष्परिणाम था - पति पत्नी का परस्पर सम्बन्ध विच्छेद जनित पारिवारिक विध्वंस। पिता की

१. असितकुमार मुखोपाध्याय - सूनीराह : प्रतिमान का सन्दर्भ
२. सूनीराह - पृ० ९६
३. वही - पृ. ३८
४. वही प. १४५

निरंकुश अहं वृत्ति से पुत्र विजय देव की निरंतर उपेक्षा होती रही जिसका परिणाम यह हुआ कि पुत्र पिता के प्रति विद्रोही स्वर में कहने लगा -

> 'मेरे पिता है कहाँ ? पिता ही होते तो तुमको कर्मयोग
> के लिए मामा के घर रहना पड़ता १

कीर्ति देव ने दूसरा विवाह सत्यवती से किया । उनकी पुत्री नयनतारा को अपने मामा पंर प्रसन्नमन उपाध्याय (सत्यवती के भाई) के घर रहकर शिक्षा ग्रहण करना पड़ी । कल्याणी, विजयदेव, कीर्ति देव की गुत्थी सुलझ नहीं सकी । विजय मात्र बी. ए तक पढ़ सका ।

विजय के जीवन में तीन नारियों का प्रवेश होता है एक रशीदा गोमा, जो विजातीय है और उसके पिता ने उसे, पंडित विजय देव शर्मा के साथ अधिक सम्बन्ध न हो सकें, पाकिस्तान भेज दिया जहां उसका विवाह हो गया । दूसरी नारी है राजेश्वरी जो उसकी बहिन नयनतारा की सहेली और सहपाठिनी है । वह भी अहं स्वभाव की उद्धत नारी है । नयनतारा ने अपने भावी पति का चित्र उसे दिखाना चाहा, कि विजय के मांगने पर राजेश्वरी ने इतना कहा 'मुह तो धोलो पहले' प्रतिउतर में विजय ने कहा - 'मै तुमसे ऐसी अशिष्टता की आशा नही करता था - राजेश्वरी ।' राजेश्वरी ने 'आशा' शब्द को आत्मीयता जताने के सन्दर्भ में सोचा और 'क्रोध से लाल राजेश्वरी सर्पदंश स्वर में उतर देती है 'आपको मुझसे किसी प्रकार की आशा रखने का प्रयोजन ?१ यही से विजयदेव बर्बर बन गया । तीसरी नारी थी बस में यात्रा करते समय मिली नारी पन्ना - त्यागमयी और समर्पिता । सौम्य और कल्याण करने वाली पन्ना के भाई से विजय वार - वार अपमानित होता है, जो स्वाभाविक भी है - परन्तु, उसके अहंकारी बौद्धिक व्यक्तित्व में एक करूण मन भी है ।

दुर्दैव विजय के साथ रहा । वह डाकू दल में शामिल होकर पं. बिहारी काका के घर डाका डालने में शामिल रहा जहां उसने राजेश्वरी को देखा और उसकी प्रतिहिंसा ने धन का मोह छोड़कर उस अहंकारी नारी राजेश्वरी के हाथ बलात्कार की चेष्टा की । वह वस्तुतः राजेश्वरी के रूप - सौन्दर्य जनित अहंकार को मिटाना चाहता था, बलात्कार करना उसका उद्देश्य ही नही था -

> 'दिन रात यौवन के मद में उन्मत रहने वाली अहंकार मयी नारी,
> देख, आज मैं तेरा यह दर्प किस प्रकार धूल में मिलाता हूँ ।"
> लेकिन दूसरे ही क्षण क्षमायाचना करने पर वह कहता है-
> 'एक दिन मै इस रूप की पूजा करता था । कभी - कभी जब नींद उचट जाती थी,
> तब इसी सौन्दर्य गरिमा की स्मृति में करवटें बदलते भोर हो जाता था ।
> किस राजकुमार को अर्द्धदान करने के लिए तुमने यह उन्मत्त यौवन सुरक्षित
> रखा है, जरा सुनू भी तो ।"[२]

१. उनसे न कहना पृ. १८ (विजय देव का कथन- नयन तारा से)

राजेश्वरी को भी आत्म ग्लानि आ कर दबाती है 'आखिर उसमें ऐसी क्या बुराई थी जो मैंने उसकी अवमानना की ! क्या यह सम्भव नहीं कि जिसने मेरे रूप का सारा वैभव उच्छिष्ट बनाकर छोड़ दिया है, आशा के आंगन में कभी न कभी चिन्तन मिलन भी उसी के साथ हो ।'[१]

एक और संघर्ष इसी कथा में गुम्फित है । विजय का एक घनिष्ट मित्र है ब्रज मोहन, जो विधुर है । राजेश्वरी का विवाह उसी के साथ निश्चित होकर सम्पन्न हो गया । किसी ने (चिन्दनियां) ने राजेश्वरी के धर्मभ्रष्ट होने की बात बिहारी पंडित के सम्बन्धी से कही जिन्होने राजेश्वरी की पवित्रता को शपथ पूर्वक स्थपित रखा । परन्तु एक दिन विजय अपने मित्र बिरजू (बृजमोहन) के घर गया तो राजेश्वरी ने सीधा प्रश्न किया, 'जो कुछ हुआ उससे तबियत नही भरी, क्यों मेरे जीवन को नष्ट करने के लिए आए हो ?" विजय ने उत्तर दिया 'यह तुम्हारा भ्रम है । तुम्हारे सिवा मुझे भी अपनी लाज है । मुझ पर विश्वास करो । विश्वासघात नहीं करूंगा ।'२ विजय ने फिर सारी बातें पहिले की तरह बिरजू को बता दी । वे दोनों बाहर चले गए किन्तु उसी रात विजय लूट के भाग का ढाई हजार रूपये राजेश्वरी को सुरक्षित रखने के लिए देकर चला जाता है । बिरजू के लौटने पर उसको झंडासिंह ने विजय के आने का समाचार दिया, राजेश्वरी ने भी विजय के आकर तुरन्त लौट जाने की बात कहीं किन्तु उसके मन में सन्देह का बीज तो अंकुरित हो ही गया । उसी समय राजेश्वरी का भाई राजकिशोर विदा कराने पहुंचा और राजेश्वरी सदा के लिए उसके साथ घर का परित्याग कर चली गई । ब्रज मोहन ने विषपान कर मृत्यु को गले लगा लिया ।

अब बची पन्ना ! विजय ने उससे पूँछा 'संसार में उसे सर्वाधिक प्रिय क्या है ?' पन्ना का उतर है - 'तुम्हारी वह प्रतिमा जिस पर में आसक्त हूँ ।' (पृ. २५२) । उसी समय होटल में विजय के माता - पिता आते है जिन्होंने पन्ना को अपनी वधू के रूप में स्वीकार कर लिया । उसी समय पुलिस ने प्रवेश कर विजय को हथकड़ी लगा दी जिसे विजय की पूर्व सहपाठी हीरा ने अपने अनुरोध पर विजय को बचा लिया ।

राजेश्वरी रुग्ण होकर क्षीण होते - होते चल बसी ! विजय ने नयनतारा से अपने राजेश्वरी के प्रति अनुराग को स्वीकार किया है-

> "नयना, मै सदा सोचा करता हूँ कि राजेश्वरी क्यों चली गयी । माना कि
> ब्रज मोहन का तिरस्कार वह सहन न कर सकती थी, पर मेरा
> हृदय द्वार तो उसके लिए खुला था, और यह बात - वह जानती थी ।"३

१. उनसे न कहना पृ० ९६-९७
२. वही पृ० १३५

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने इस सम्पूर्ण उपन्यास में मानव मन की अनेकानेक स्थितियों का चित्रण किया है- रूप का आकर्षण (राजेश्वरी में) प्रेम के तिरस्कार पर बर्बर पशुत्व का जाग्रत होना (विजय में) सन्देह और निराशा से उत्पन्न आत्मग्लानि से विष पान करना (ब्रजमोहन में) अहं और सम्पन्नता का प्रभुत्व प्रदर्शन (कीर्तिदेव, - कल्याणी के सम्बन्ध विच्छेद में) समर्पण और त्याग की उज्ज्वलता (पन्ना में) मानवीय दयार्द्रता (हीरा में) गैदा सिंह की ईर्ष्यालु वृत्ति का विषद चित्रण कर पात्रो को जीवन्तता प्रदान करना वाजपेयी जी का अद्‌भुत कौशल है।पात्रों का चरित्र - विकास कर कथानक का उन्नयन करना ही तो यथार्थ से बुने हुए वस्त्रों को स्वर्ण खचित अलंकारों के आदर्शों से समन्वित करना है।

पात्रों के चरित्र विकास के साथ घटनाओं के चढ़ाव उतार से कथानक भी जीवन्त एवं स्वाभाविक रोचकता औतुसुक्य और सुरूचि बनाए रखने में सफल रहा है। नर - नारी सम्बन्धों, मानव - मन की कुण्ठाओं तथा उनके अन्तर्जगत व वहिर्जगत का विवेचन कर लेखक ने इस उपन्यास को एक शुद्ध मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित किया है। विजय की बर्बरता का आतंक और करूणा का गीलापन दोनों ही हम अन्त तक अनुभव करते रहते हैं। विजय का चरित्र मनोविज्ञान की ही अध्ययन भूमि है-

> " मर गया राजेश्वरी, तुम्हें मालूम नहीं मेरे अन्दर का वह
> बर्बर विजय अब इस संसार में नही है। प्यार के बदले
> जो बर्बरता हो गई हो उस पर रोया बहुत पर उससे क्या
> होता है। मन के अन्दर कितना क्रन्दन आछन्न है कौन देख
> पाता है।" पृ० २३७ - २३८

वाजपेयी जी के पास भाषा का कौशल है। संस्कृतनिष्ट हिन्दी, मुहावरे दार भाषा, व्यंग्य और शिक्षित अंग्रेजी के पदांश भी उनके इस उपन्यास की शोभा बढ़ाते है। पात्रानुकूल भाषा से ग्रामीण एवं नागरीय, शिक्षित एवं अशिक्षित, स्त्री तथा पुरूष सभी की भाषा उपन्यास के वातावरण सृजन में सक्षम है। एक शब्द में 'उनसे न कहना' उपन्यास एक रोमान्टिक कथा कृति है।

दूखन लागे नैन -

भ. प्र. वाजपेयी का यह उपन्यास 'दूखन लागे नैन' अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय है। इसका प्रकाशन वर्ष १९६० है जो उनके प्रौढ - लेखन की ओर इंगित करता है। वाजपेयी जी सदा ही उच्चमध्यम वर्गीय परिवार और उसके सम्पर्क में आने वाले किसी निर्धन किन्तु मेधावी नवयुवक के

१. उनसे न कहना पृ. - १९०
२. उनसे न कहना पृ. २२४
३. वही - पृ. २६२

संघर्ष युक्त जीवन का चित्रण करने में अत्यधिक कुशल है। 'दूखन लागे नैन' उपन्यास का ताना - बाना इसी पारिवारिक समस्या के प्रेम - रोमांस की कथा के साथ - साथ सामाजिक यथार्थ का साहसिक आदर्श समाधान खोजने के प्रयत्न का एक मनोवैज्ञानिक स्वरूप है।

नवयुवक प्रभाकर एम. ए का एक स्वरूपवान स्वस्थ और मेधावी छात्र है जो मलहोत्रा - परिवार में गृहणी विदुषी गीता देवी को पढ़ाने के लिए जाता है। गीता की पुत्री वीणा उसके प्रति सहज ही आकर्षण रख प्रेम - भाव पालने लगती है। इसी परिवार के साथ वीणा की मौँसी की पुत्री उर्मिला भी अपनी माता की मृत्यु के उपरान्त रहने लगती है क्योंकि उर्मिला के पिता कमलाकान्त ने 'यूथिका' नामक स्त्री के साथ विवाह कर लिया है। उर्मिला शान्त और सौम्य है, वीणा मुखर और अभिजात्य गौरव से मण्डित। किन्तु, दोनों ही प्रभाकर के प्रति अपने अनुराग को गोपन रखती है। ऐसा त्रिकोण वाजपेयी जी के उपन्यासों में प्रायः मिलता है। अपने पारिवारिक सम्मान और अभिजात्य के कारण वीणा का विवाह एक सम्पन्न परिवार में हो जाने पर भी प्रभाकर के प्रति उसके अनुराग की एक उत्कट आंकाक्षा बनी ही रहती है। विवाहित होने पर भी वह यह कहने में संकोच नहीं करती-

> 'आज ही नही, जीवनान्त के क्षण में भी मै यही सोचूँगी,
>
> काश ! उनकी जगह तुम होते।"

हमारे संस्कारवादी मन को यह सोच भले ही रूचिकर न लगे किन्तु, इस सदी में नए प्रगतिशील विचारों की सोच का यही यथार्थ है। वाजपेयी जी की कला की विशेषता यही है कि उन्होंने वीणा के पति का नाम भी प्रभात रख दिया जो प्रभाकर की स्मृति को सदा हरा बनाए रखने में सहायक है। प्रभाकर - वीणा- उर्मिला के रोमांटिक त्रिकोण में यह कथा विकसित हुई है।

प्रेमचन्द की भांति भगवती प्रसाद वाजपेयी भी मध्यमवर्गीय संवेदनाओं की मर्यादाओं से अनु.बंधित है। वे मात्र वैयक्तिक कुण्ठाओं की की तीव्रता से भलीभांति परिचित है किन्तु, उनसे निवृत्ति पाने के लिए सामाजिक विद्रोह का शंखनाद नहीं करते। गांधीवादी प्रभाव के कारण वे अन्दर से भावनात्मक परिवर्तन कर समाज के व्यष्टिपरक चिन्तन को समष्टिपरक चिन्तन में परिवर्तित होने देने के पक्षधर है। सम्भवतः वाह्य जीवन के निरन्तर तनाव ग्रस्त परम्परावादी जीवन के भीतर वे भाव जगत की अन्तः सलिला का निश्छल और उन्मुक्त प्रवाह देखने की कामना करते हैं।

'दूखन लागे नैन' चरित्र प्रधान कथावृत्त में घटनाओं के संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व और युगबोध का चित्रण है। प्रभाकर की गरीबी को लेखक ने इस प्रकार चित्रित किया है-

(प्रभाकर का सोच है) 'यहां एक चिक डालनी होगी, लेकिन आज तक वह नहीं ला सका, चादर भी मैली पड़ जाती है। तकिया को तो वह चादर के नीचे छिपा कर रख देता है।'

(कानपुर नगर के घरों में प्रायः चिक पड़ी रहती है जिसे वाजपेयी जी ने स्वयं देखा होगा। संयोग है, प्रेमचन्द का कथाकार भी कानपुर से उदय हुआ था)

अभावों में निरन्तर जीवन - संघर्ष करने वाला व्यक्ति प्रभाकर भाग्यवादी होगा - क्यों? स्वयं वाजपेयी जी कर्म को प्रधान मांनते रहे है उनका कर्मवाद में अत्यधिक विश्वास था तो प्रभाकर भाग्यवादी क्यों होता?

> 'जी हां, भाग्य कुछ नहीं है। जो कुछ है वह प्रयत्न, उद्योग
> और पुरुषार्थ है। भाग्य अवसर का अनुचर है, वह संयोग
> से आता है। लेकिन हम संयोग की प्रतीक्षा में कब तक बैठे रह
> सकते हैं। हम उसका निर्माण करेंगे और ऐसी परिस्थितियों को जन्म
> देंगे जो स्वयं अवसरों को हमारे पास खीच लाएंगे। न लाएंगी तो
> हम उनसे लड़ेगे, उसके लिए संघर्ष करेंगी, लेकिन भाग्य के आगे
> घुटने नहीं टेंकेगे, रिरियाएगे नहीं, उस पर विजय प्राप्त करेंगे।'

इस नियतिवाद पर हार्डी ने अपने उपन्यासों का इतना बड़ा भवन खड़ा किया है, इसे ही भगवती प्रसाद वाजपेयी ने नकार दिया।

वाजपेयी जी मूलतः प्रेम के लेखक है। उनकी अनुभूतियां प्रेम के निश्छल आत्म समर्पण और त्याग में ही देखती हैं जिसे हम आदर्श कहते है। भले ही इस आदर्श प्रेम में हमें रोमांटिक भाव की झलक मिले। ऐसा रोमांस जिसमें आस्था और निष्ठा हो तो वाजपेयी जी उसे त्याज्य नहीं मानते अपितु उसका रोचक वर्णन करेंगे। चारित्रिक मर्यादा की सीमा को बनाए रखकर प्रभाकर अपनी प्रेयसि वीणा को भी प्रबोध कर सकता है -

> "भावुकता में आकर कभी कोई ऐसी नादानी न कर बैठना जिससे
> मुझे पीड़ा पहुँचे, क्योंकि यदि कभी ऐसा अवसर आ ही गया और
> जीवन भर प्रायश्चित के बाद भी मेरी पीड़ा कम न हुई - तो न इस जीवन
> में ही नही - इसके उपरान्त जन्म जन्मान्तर में उत्पन्न होने वाली
> तुम्हारी आत्मा को शान्ति कमी नहीं मिलेगी।'

(उपन्यास से)

ऐसा विश्वास जो जन्म - जन्मातरों तक में विश्वास बनाए रखे, अन्ततः एक निश्छल और सत्याग्रही ही कर सकता है। यही प्रभाकर के चरित्र की उज्ज्वलता है। उसका विश्वास है कि - 'दुराग्रही व्यक्ति कभी पूर्ण सन्तुष्ट हो ही नहीं सकता।'

वाजपेयी जी का जीवन दर्शन 'हानि लाभ, जीवन मरण, यश - उपयश से परे है - वह सब विधि विधान ' को स्वीकारते हुए भी उत्साह और कर्मनिष्ठा की अवधारणा पर स्थित भी है, अतः पहले मानवीय कर्म, प्रयत्न और निष्ठा आवश्यक है, तदुपरान्त फल तो उसके अनुरूप होगा ही। गीता में भी भगवान यही संदेश देते है - 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्' में उसी की अनुगूंज है। किन्तु, इसका कतई यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि वाजपेयी जी यथार्थ से मुँह मोड़कर चलते है। यदि यथार्थ का स्वरुप वे प्रस्तुत करना चाहते है तो उससे उनकी कथा और पात्र के चरित्र को बल ही मिलता है क्योंकि वह यथार्थ वस्तुतः उनके चतुर्दिक व्याप्त सामाजिक स्थिति का वातावरण ही है। प्रभाकर स्वयं निर्धन है तो निर्धन भारत का एक संवेदनशील चित्र से वह स्वयं द्रवित तो होता ही है । इससे एक समाज की राष्ट्रीय संवदेना की भी अभिव्यक्ति होती है-

> 'सड़क के किनारे जीर्ण- शीर्ण , गन्दे टाट और चिथड़ो से बनी
> एक झोपड़ी खड़ी थी जिसके भीतर एक स्त्री चक्की पीस रही थी।'

किन्तु इसी संवेदना से जो पौरूषेय ध्वनि निकल रही है वही कर्म की प्रेरणा है, जो आज भी राष्ट्रीय सन्दर्भों में प्रासंगिक है-

> 'इस वर्ग की ओर हमारा यथेष्ट ध्यान गया ही नही।
> किन्तु हम अकेले कर भी क्या सकते है। यह भी सर्वथा
> पराजित भावना है जिन्होंने देश को, समाज को, सभ्यता को
> नए विचार दिए, वे सब पहले अकेले थे। अकेले ही
> वे कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण हुए, तदनन्तर उनको साथी
> मिले, अनुकरणीय शिष्य मिले, कालान्तर में वही महापुरूष
> कहलाए।'

कहना न होगा कि वाजपेयी जी स्वतंत्र भारत के पूर्व और बाद के क्रिया कलाप में महात्मा गांधी के जीवन वृत्त और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'एकला चलो रे' गीत की अनुगूंज और दाण्डी मार्च के प्रभाव को अपने से पृथक कर ही न सके हों।

प्रभाकर के चरित्र को वाजपेयी जी ने प्रेम की भावना और निस्वार्थ सेवा से सजाया है, उसमें निराशा कुष्ठा और पराजय की भावना से संघर्ष करने का साहस सृजित किया है। यह सही है कि प्रेम

व्यापार में उसमें वीणा अथवा उर्मिला, वीणा और उर्मिला दोनों की देहयष्टि समाई हुई है। दोनों की चोटियां है किन्तु वीणा में चोटियां (दो) नही खूंटिया होती है, स्वर तो चोटियां भी निकालती है। उनका स्वर 'वही लोग सुनते और समझते है जिनमें भावना होती है जो जीना चाहते हैं।— लेकिन ये चोटियां वीणा की है या उर्मिला की, किसी की नही, जी ! मन के तारो की हैं।' यह अन्तर्द्वन्द्व ही तो उसे दूर से निकट और निकट से दूर ले जाकर उसकी मर्यादा को बनाए रखते है। वीणा और उर्मिला के प्रति रागी और विरागी मन की विवशता का कैसा यथार्थ मनोवैज्ञानिक स्वरूप चित्रित है, रोमांटिक भी और दार्शनिक भी।

'दूखन लागे नैन' आज के सामाजिक जीवन का उपन्यास है, नौजवानों के आत्म चिन्तन का उपन्यास है और राजनीति के नेताओं की गलित मानसिकता का उपन्यास है। नये जवान अपने व्यक्तित्व में पनपती उद्वेलित आशा और आंकाक्षाओं के द्वन्द्व में चित्रित है। कथाकार उपेक्षा की सीमा, उदास मुद्रायें और भंगिमाओं में जीकर भी उनसे सम्पृक्त न होकर आत्मालोचन में लीन है। उसका मानना है कि

> "स्वप्नगत परिकल्पनाओं और अन्तश्चेतनाओं के नाना प्रकार
> के अवचेतन मन की विविध छायाओं और मुद्राओं में वही
> छवि और वही मुख ! यह सब क्या है —— अब सो जाओ छुन्ना।
> इन बातों में कुछ दम नहीं है।
> मंजरियों में जितने दाने फलते है, वे सब के सब तो परिपक्व
> अवस्था को प्राप्त नहीं होते ।'

यह तो छात्र के मन का अन्तर्द्वन्द्व है। दूसरी ओर देश के नेतृत्व पर भी एक कटाक्ष है- आज भी सत्य है, समन्वयवादी नेता लिब- लिब होता है।' वाजपेयी जी का मानना है कि 'जीवन एक प्रयोग नहीं एक लक्ष्य है।' (महात्मा गांधी के आत्मचरित्र का नाम है 'सत्य पर मेरे प्रयोग') जगह - जगह पर उपन्यास में सूक्तियां ही सूक्तियां है। 'मनुष्य जब संघर्ष करते - करते टूट जाता है तभी वह पलायन की शरण लेता है', क्योंकि 'हर एक बुद्धिवादी कायर होता है'। 'जीवन स्वयं असफलताओं का एक सफल समीकरण होता है'। 'एक प्रेम ही तो है जो जीवन की एकमात्र मूर्धन्य प्राण शक्ति बनकर सारे अपराधों को एक घूंट में, एक सांस में सदा के लिए पी जाता है', 'एक न एक अभाव जीवन में सदा रहा है। मनुष्य को कभी पूरा सन्तोष नही होता। भगवान की इस अद्भुत रचना का

यही एक रहस्य सत्य और कटु सत्य है।' इन्हीं सब जीवन तत्वों की वास्तविकता का नाम है यह उपन्यास और इसके पीछे वाजपेयी जी का आश्वास्त रचनाकार का व्यक्तित्व है।

'दूखन लागे नैन' की नायिका कौन है- वीणा या उर्मिला। वीणा विवाह रचाकर भी प्रभाकर की ओर अनुराग भरी है। उर्मिला दूर रहकर भी मौन समर्पण और प्रेम की निष्ठा से उसके प्रति समर्पित है। किन्तु कितना विचित्र संयोग है विवाह सम्बन्ध के उपरान्त उर्मिला के नयनों का दुखना तो बन्द हो ही जाएगा पर क्या सर्वांश समर्पित, विवाह के उपरान्त भी' वीणा के नयनों का दुखना क्या बन्द हुआ या होगा? जो नायिका बनकर भी नायिका न बन सकी। वीणा या कि नायिका न रहते हुए भी समर्पण - प्रेम - निष्ठा - मर्यादा को स्थापित कर सकी उर्मिला! दोनों ही नायिकाएं है या दोनों ही नैनों को जीवन भर दूखने के लिए बनाए रही।

अपनी बात 'अधिकार का प्रश्न' उपन्यास के लेखन - उद्देश्य, उसकी मूल चेतना और अधिकार और कर्तव्य के द्वन्द्व को अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु लेखक के मन्तव्य को वर्णित करती है उपन्यास की भूमिका - अपनी बात है। इस उपन्यास का प्रकाशन १९६५ में हुआ था और तब लेखक प्रेम और रोमांस को बहुत पीछे छोड़कर राष्ट्रीय सामाजिक चिन्तन धारा में अवगाहित हो रहा था। 'इस उपन्यास के लेखन में युग - चेतना का ही ध्यान विशेष रूप से रहा है।'१ स्वयं लेखक की आत्म - स्वीकृति है।'नव्य संस्कृति' (So called neo- culture) के नाम पर मर्यादा- हीनता का परिपालन और पुरातनता या परम्परा का वर्जन मात्र हठवादिता और अहित का आमंत्रण है। नूतन और पुरातन परस्पर- सापेक्ष स्थितियां है और समाज की रचना पुरातनता के आधार पर नूतन स्तम्भों को स्थापित करती आई है- ठीक उसी प्रकार जेसे कर्तव्य के साथ अधिकार और अधिकार के साथ कर्तव्य संयोजित है। इनमें से एक की भी शिथिलता दूसरे के असन्तुलन का कारण बन जाती है।'

इस उपन्यास में कुल १५३ पृष्ठ है अर्थात् उपन्यास कलेवर में यह सबसे छोटा उपन्यास कहा जा सकता है। इस लघु वृत्त में न तो घटनाएँ ही प्रधान है और न चरित्र ही; न इसमें सामाजिक वातावरण का ही चित्रण प्रतीत होता है और न ही मानवीय संस्कृति के घात- प्रतिघात का। इसे लेखक की मानसिकता और दर्शन- प्रधान विचार - कृति कह सकते है। घटनाओं का संयोजन मात्र विचारों की संगत - अभिव्यक्ति हेतु किया गया है। जिस प्रकार जार्ज बर्नाड शा और गॉल्सवर्दी की कथायें समाज में विचार क्रान्ति को जन्म देती रही है ठीक उसी तरह वाजपेयी जी की यह कृति भी वैचारिक क्रान्ति को जन्म देने के लिए ही लिखी गई प्रतीत होती है।

उपन्यास - कथा किंचित छोटी है, संघर्ष हीन/ मात्र चार- छह पात्रों में सीमित और सभी पात्र पारिवारिक है, - माता- पिता भाई - बहिन, पुत्र- पुत्री, सास - ससुर, पुत्रवधू और पौत्र, बस। एक परिवार की करूणा विगलित तीन पीढ़ियों की वेदना से भरी कथा में जीवन - संघर्ष का होना ही कथानक की मूल चेतना है। काशीबाबू पुरानी पीढ़ी की प्रतिमूर्ति है उनका पुत्र उपेन्द्र नयी पीढ़ी का अधिकार प्रेमी बुद्धिशील है तो उसका पुत्र देवेन्द्र अधुनातन स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का नव- युवक। वह पश्चिमी विचारधारा और जीवन शैली से अधिक प्रभावित दर्शाया गया है।

कथा के प्रारम्भ में महावीर बाबू अपनी पुत्री मंजू की विदा करते हुए तथा विदाई वेला के करूणा - पूर्ण वातावरण में चित्रित किए गए है। बीघापुर का रेल्वे स्टेशन जहां महावीर बाबू काशीबाबू को विदाई कर रहे हैं। उनका एक करूणा सिक्त वाक्य मर्मस्पर्शी है- 'मैं उसका (मंजु का) पिता हूँ किन्तु, आप उसके धर्म पिता है।'

परम्परागत परिवार में पुत्र इतने उच्छृंखल नहीं होते कि अपने माता- पिता का तिरस्कार कर पत्नी के साथ विवाह के उपरान्त ही नयी गृहस्थी बनाने के लिए गृह - त्याग कर दें, जो काशीबाबू के पुत्र उपेन्द्र ने किया। वह अपनी पत्नी मंजू के साथ पोखरायां चला गया। साख वाले पिता ऐसा तिरस्कार कब सहन कर पाए? टूट गए, रूग्ण हुए और भग्न ह्दय इहलोक छोड़ गए। देवेन्द्र दूसरा अधुनातन अच्छृंखल युवा भी निर्धन माँ- बाप को अपमानित करने से नहीं चूका, उसने भी अपनी पत्नी तरुलता का परित्याग कर दिया जो अन्त में चल बसी। बस करुणा का लोक सृजन ही जैसे उपन्यास कार का उद्देश्य हो।

काशीबाबू का परिवार परम्परावादी है।और उनका बेटा उपेन्द्र कथा का नायक और उपेन्द्र का बेटा देवेन्द्र तो नितान्त आधुनिक इस प्रकार बनी तीन कथायें - तीन पीढ़ियों की -

१- काशी बाबू की परम्परावादी कथा

२- उपेन्द्र की आधुनिक युग की कथा

३- देवेन्द्र की अधुनातन युग की उच्छृंखल कथा।

दो पीढ़ियों की कथा तक तो कथा - निर्वाह और कथा संघर्ष सम्भव प्रतीत होता है किन्तु, तीन पीढ़ियों तक ले जाने में वाजपेयी जी उतने सफल नहीं हो सके जितने प्रेमचन्द 'कायाकल्प' में, उपर्युक्त तीन पीढ़ियों को पात्रों में - काशीबाबू, महावीर, आधुनिक युगीन पात्रों में उपेन्द्र और अति आधुनिक में देवेन्द्र है। काशीबाबू आदर्शवादी 'वृद्ध विचारक और सद्‌गृहस्थ' है। मर्यादा और कर्तव्य बोध उनकी विशेषताएँ है। वे ईश्वर में विश्वास रखते हैं और गीता के श्लोक में आस्था रखते

१. अधिकार का प्रश्न पृ. सं. ३

है और निरन्तर उसका पाठ करते है। वे परमात्मा को जीवन- नाटक का सूत्रधार मानते है और मनुष्य को मात्र उसके हाथ का खिलौना । अंग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर ने भी 'The whole world is a stage ----' *आदि कहकर यही मन्तव्य प्रकट किया था। काशीबाबू का प्रिय श्लोक है-*

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेदर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्मारूढ़ानि माया॥ गीता १८/६१

काशीबाबू की आत्मस्वीकृति है-

"नाटक तुम लिखते हो, रंगमंच तुम तैयार करते हो,
सूत्रधार तुम बनते हो और अन्त में निर्देशन भी तुम्हारा
ही रहता है। हम तो केवल पात्र है, जो तुम्हारे
संकेतों पर अभिनय करते रहते हैं।"

वे अनुभवी बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति है भले ही उच्च शिक्षा उन्हें न मिली हों 'काशीबाबू साधारण व्यक्ति नहीं; वे समुद्र है, जो अपनी मर्यादा कभी नहीं छोड़ता। वे हिमालय है, जो चाहें तो इस बात का गर्व कर सकते है कि मैं भारत का ही नहीं संसार - भर का मुकुट हूँ।" काशी बाबू ही उपेन्द्र के विषय में कहते हैं-

(वह) हमारी अगली पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता
हुआ दिखाई देता है। वह हमारी पिछली पीढ़ी के
पिछलग्गुओं में से नहीं है। बदलते हुए जीवन - मूल्यों
का वह प्रतीक ही नहीं प्रचारक भी है।'

उपेन्द्र यथार्थवादी है, उद्धत है, उग्र स्वभाव वाला है, अधिकार ऐसा लोलुप है और इसके लिए वह मर्यादा, धर्म, कर्तव्य सबको तिलांजलि दे सकता है। उसका मन्तव्य है-

'मनुष्य के अधिकार का उद्भव- उद्भव नहीं विकास भी
परम्पराओं को तोड़े बिना कभी सम्भव नहीं होता।'

वह ईर्ष्यालु भी और दुराग्रही भी; अहंकारी और धन लोलुप व्यक्ति जो अपने पिता का भी अपमान कर सकता है।

किन्तु, भग्नहृदय पिता की मानसिकता क्षमा शीलता की ओर उन्मुख है तथा उस समय वह मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सम्पूर्ण भूमि एक खुली किताब हो जाती है। और उपेन्द्र भी कम उलझन का सामना नहीं करता। सौम्य पिता के संस्कार उसे पितृ- भक्ति की ओर आकर्षित करते हैं और

महत्वाकांक्षा उच्छृंखल बनाती है। विचित्र संकल्प विकल्प की खींचातानी में वह महत्वाकांक्षा की ओर ही मुड़ता है।

'अधिकार के प्रश्न' में पम्परावादी प्रथायें, नेग और लोकाचार, परछन, विदा, गौना आदि रीति रिवाजों का परिपालन है; दिशाशूल है; फूफा, बहनोई, दामाद का पूज्य सम्मान होना, पौत्र- जन्म पर उत्सव मनाना, दहेज- निषेध आदि अनेक सामाजिक परम्पराओं और कुरीतियों का यथातथ्य चित्रण भी है। यदि दाह- संस्कार की परम्परा पर नयी पीढ़ी का यथावत् अनुकरण है तो 'महाब्राह्मण और घटिया पण्डा' को दान देने के पाखण्ड का विरोध करना भी संगत प्रतीत होता है।

सच तो यह है कि इस उपन्यास में समाज के नव- निमाण का स्वर गूँज रहा है।मर्यादित अधिकार को लेखक शान्ति का प्रदाता समझता है और अनियंत्रित अधिकार पारिवारिक कलह से समाज को भी कलंकित करता है।

एक विशेषता और है इस उपन्यास में, इसकी काव्यात्मक शैली। एक 'रूपक' प्रस्तुत है-

> "वह एक प्रवाह था, जिसमें मैं बहा जा रहा था।वह एक
> आंधी थी, जो मुझे आगे बढ़ाती जा रही थी। वह एक
> अमानिशा थी, जिसमें मुझे आगे का मार्ग दिखाई नहीं
> दे रहा था। वायु, मिट्टी, छोटे- छोटे तिनकों और कागजों
> के टुकड़ों से मिला हुआ एक विवर्त और बवण्डर था,
> जिसमें पड़कर मैं अपनी अन्तश्चेतना खो बैठा था।"

ऐसा लगता है जैसे इस गद्य- काव्य में जयशंकर 'प्रसाद' की आत्मा बोल रही हो- वे ही शब्द, वैसी ही विराट कल्पना। शेष भाषा तो अंग्रेजी मिश्रित वाक्य, मुहावरे और लोकोक्तियां तो प्रायः वाजपेयी जी के उपन्यासों में वातावरण की द्योतक बन कर स्वाभाविक रूप प्रस्तुत करती है। कहीं - कहीं पर वाक्य सूक्तियां बन कर सामने आते है-

> 'परिस्थिति भीरू पुरूष का एक अस्त्र होती है; गरीबी ईश्वर को
> अपने निकट अवश्य रखती है, आंसू मानवता की रस सृष्टि है।'

'अधिकार का प्रश्न' वस्तुतः समाज में पुरातन एवं नूतन, आस्थावादी और अनास्थावादी स्वरों का द्वन्द्व संघर्ष है। सद् - असद् से ऊपर एक स्थिति सदासद् की भी है - वाजपेयी जी इसी के कायल है, सब कुछ परम्परावादी हेय नहीं है और न ही नवीनता को समाज में आने से कोई रोक सकता है किन्तु दोनों की ही एक मर्यादा है उसका सम्मान होना ही चाहिए। यही उपन्यास का सन्देश है।

****

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में चरित्रांकन
(नारी पात्र, पुरुष पात्र, समाज और राष्ट्र)

(वाजपेयी जी ने नारी समस्याओं पर व्यापक रूप से विचार किया है। भारतीय नारी का जीवन बड़ा अभिशप्त रहा है और आज भी विकृत है। इसके दो प्रमुख कारण व्यक्त हुए है। प्रथम कारण यह है कि वह शिक्षा के प्रकाश से शून्य है और द्वितीय यह कि आर्थिक रूप से किसी न किसी के आश्रित बनी रहती है।)

नारीपात्र :

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों के नारी पात्रों को अध्ययन करने के लिए हमें उस युग के प्रेरक लेखकों की तुलना में एक ऐसा निकष तैयार करना होगा जिस पर हम वाजपेयी जी के उपन्यासों के पात्रों को देख सकें। उस युग में प्रेमचन्द और प्रसाद ने समाज में उत्पन्न विसंगतियों को देखा था और मानव - मन की काम कुण्ठाओं में डूबे हुए समाज को चित्रित किया था। इन दोनों ही तत्वों से सम्पृक्त और विरत रहकर वाजपेयी जी ने प्रेम- वासना और कर्तव्य के त्रिभुजीय आयामों में नारी जीवन के वहिर्तत्व और मनस्तत्व को जानने का प्रयास किया है। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने इन नारी पात्रों का चरित्र कितनी बार समाज में व्याप्त व्यवहारों में देखकर अनुभव किया होगा और कितनी बार स्वयं जीकर जाना होगा। इन्हीं दोनों प्रक्रियाओं में चित्रित ये नारी पात्र सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में जीवन्त हो उठे हैं।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में अधिकांश प्रेम को विभिन्न स्थितियों में मनोभावों को चित्रित करने वाले नारी पात्रों के चरित्र को जीने वाले उपन्यास है। इससे प्रतीत होता है कि वाजपेयी जी उस श्रृंगार की विकसित कड़ी है जो कविता की भांति नारी को जीवन की समालोचना मानकर उसका चित्रण कर सके है। एक ओर वे नारी में भारतीय संस्कृति के आदर्श को लक्ष्य मान कर चलते है तो दूसरी ओर आज के वैज्ञानिक युग की फ्रायडवादी कामजन्य वृत्तियों के चित्रण को उसी नारी चरित्र में संयोजित करने का प्रयास करते हैं। इसीलिए उनके नारी पात्रों में एक नैसर्गिक वृत्ति का दर्द भी है और प्रणय प्रक्रिया के आदर्श और यथार्थ का स्वरूप भी चित्रित है। वे सभी पात्र तर्क और कल्पना-लोक के भटके मन्तव्यो के आदर्श है और जीवन की कटुता के यथार्थ भी। इन पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि "जिस युग में पाप और पुण्य, सत्य और असत्य, अमीरी और गरीबी, दासता और बेगार का उद्देश्यमूलक चिन्तन प्रेमचन्द युगीन उपन्यास कार कर रहे थे, उस समय घर के आंगन को पार कर, उसकी छतो और कोठरियों में विकस रही मदनानुभूति की ओर जिसका ध्यान खिच कर गया था वह मोहन कथा शिल्पी और कोई न होकर वाजपेयी जी ही थे।

वाजपेयी जी के 'प्रेमपथ' से 'कर्मपथ' तक इसी धारा का विकास मिलता है।[१] यदि मनोविज्ञान में फ्रायड ने मदनानुभूति (सेक्स) की व्याख्या दी है तो वाजपेयी जी ने अपने शिल्प के माध्यम से कथा-सूत्रों का सहारा लेकर भारतीय सामाजिक जीवन में 'यौन आकर्षण' की कलात्मक अभिव्यक्ति की है। 'परकीया- गमन' वाजपेयी जी की विवशता न होकर विशेषता हो गई है।[२]

भगवती प्रसाद वाजपेयी का उपन्यास सृजन उच्च मध्यम वर्गीय समाज से नीचे तक के समाज का चित्रण करता है। यही कारण है कि गाँव की 'मुरली' और नगर की 'करुणा' नारियों से उन्हें मानवीय सहानुभूति है। कतिपय नारी पात्रों को वाजपेयी जी ने अपनी कल्पना में संवेदन ग्राह्यता के आवेग में स्वयं जिया है। 'टूटा टी सैट' की नीलकमल अर्थ से पीड़ित है पर बिकने की नियति से दूर भी है, फिर भी वह बिकती है। तब यह प्रश्न उठता है कि जब पेट की भूख तन को बेचकर इस्मत में आग लगाकर ही शान्त होती है तब यह समाज सीता- सावित्री के आदर्श की लाशों को क्योंकर ढो रहा है ? 'टूटते बन्धन' की 'मुरली' अपनी सखी बेला के पति यशवन्त से अवैध सन्तान पाकर भी विवशताओं से घिरकर उपयुक्त जीवन- साथी पाकर यशवन्त को छोड़कर नई दुनियां बसा लेती है। 'सूनी राह' की उच्च मध्यम वर्ग की 'करुणा' शिक्षिता भी है और अपने पति सत्याचरण को छोड़कर निखिल के साथ प्रणय लीला के आकर्षण को छोड़ नहीं पाती पर स्वयं अपने अन्तर्द्वन्द्व में संघर्षरत रहकर भी निखिल को पाना चाहती थी किन्तु, निखिल मैं वह पुरुषत्व न था जो सत्याचरण के रहस्यमय व्यक्तित्व में था। अन्ततः वास्तविकता ज्ञात होने पर वह निखिल से मुंह मोड़कर सत्याचरण के साथ ही चली जाती है।यह अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक वेदना, और कामवृत्ति वाजपेयी जी के संवेदनशील मन की विशेषता है। निमंत्रण में गिरधारी - रेणु के शुष्क पारिवारिक जीवन की गति में मालती के प्रवेश से गिरधारी - मालती के अन्तर्द्वन्द्व से परिवार - स्वरूप और अधिक जटिल तथा संघर्षरत द्वन्द्व को चित्रित करता है। मालती की तब विकृत मनोदशा विशिष्ट ग्रन्थियों की परिचायक है। फ्रायड- सिद्धान्त से वह अपने पिता के प्रेम को गिरधारी में रूपायित कर उचित अनुचित सभी कर सकती है ताकि उसका गिरधारी को छीनने का संकल्प पूरा हो सके वह कहती है -

१- जीवन शुक्ल - नारी पात्रों का सृजन बोध - निबन्ध

२- वही

मैं आजाद हूँ, मैं पुरुषों के बीच रहती हूँ, उनसे स्वतंत्रता
पूर्वक मिलती हूँ। बस, इसीलिए मैं चरित्रहीन हूँ और
घरों के अन्दर सीता और सावित्री जैसी सती, शकुन्तला और
उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्रियों को पालते हुए भी
जो लोग कैप्ट प्रास्टीच्यूट (रखेल वेश्या) रखते है, वे
क्या है? .... रह गई चरित्र की बात तो वह केवल शरीर
के स्थूल व्यापारों तक ही सीमित है, मैं नही मानती। चरित्र
मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है। जो लोग दुनियां भर
के झूठ - सच, छल- प्रपंच, कपट- धूर्तता तथा ईर्ष्या- द्वेष के
खून से रंगे हैं, जो मनुष्य के साथ कुत्ते का - सा
व्यवहार करते नही लजाते, जो सत्य और न्याय से दूर रहकर
एक मात्र स्वार्थों में ही से लग्न रहते हैं, पैसे के बल पर जो जमीन
और जायदाद, स्त्री और प्रेयसि के लिए भाई और पुत्र तक का
छिपकर सत्यानाश कर सकते है, जो समाज उन्हें चरित्रहीन
नही मानता, मैं ऐसे समाज को नही मानती।१

यह मालती का 'फ्रायडियन ट्रान्सफर्ड ईगो' है जो आक्रोश का रूप ले लेता है। और वाजपेयी जी का संस्कारगत मन मालती के रूप में अपने ही नवीन विचारों का उद्घोष करते है और सुस्कृत विनायक से मालती का विवाह करा देते है। 'चलते चलते' उपन्यास में वंशी की पत्नी (छोटी भाभी) भी यौन कुण्ठाग्रस्त नारी है। इसी उपन्यास में कम से कम पांच स्त्री- पुरुष युग्म ऐसे हैं जो काम कुण्ठा से अवैध सम्बन्ध स्थापित किए हैं-

१- पाण्डेय - चाची
२- रामलाल - विमला
३- जमुना - मुरली
४- वंशी - लाली
५- वंशी - अर्चना

इनके अतिरिक्त एक पक्षीय अवैध सम्बन्धों में छोटी भाभी - राजेन्द्र, लाली - राजेन्द्र तथा वैशाली - राजेन्द्र सम्बन्ध दृष्टव्य हैं। यह सम्पूर्ण उपन्यास फ्रायडवादी मनोग्रंथियों का विभिन्न सन्दर्भो में एक विषद अध्ययन फलक है जो पारिवारिक ही नही सामाजिक वैषम्य का भी अध्ययन क्षेत्र है। राजेन्द्र आज के सन्दर्भ में सोचता है-

१. निमंत्रण पृ. २९

'आज की इस सभ्यता को मनुष्य ने कुत्ता बना डाला है, पैसे
की मांग, पैसे की पुकार और पैसे की भूख पैसा ! हाय पैसा ! !
यह कैसी चिल्लाहट है ? उफ विल्कुल वैसी ही आवाजें है
जैसी कुते के भौकने पर होती है ?१

'गुप्त धन' के सभी पात्र प्रतीक के रूप में अवतरित है । पात्रों की मनोवैज्ञानिकता और प्रतीक अर्थ सर्वाधिक सुन्दरता से इसी उपन्यास में चित्रित किए गए हैं । 'यथार्थ से आगे' में रंजना और अरुणा एक 'स्वागत गीत' के लिए कालेज में उत्तरदायी है । अरुणा का विश्वास पाने के लिए नायक - 'प्रदीप' स्वयं बहुत बड़ा बनने का संकल्प साध लेता है । इसके विपरीत 'रंजना' एक पूंजीपति की पुत्री होते हुए भी 'प्रदीप' के बुरे दिनों में साथ देकर महत्त बन जाती है । कुल मिलाकर वाजपेयी जी के इस उपन्यास में भी प्रेम - त्रिकोण का ताना - बाना है । 'उनसे न कहना' उपन्यास में राजेश्वरी का चरित्र भी पति और प्रेमी के त्रिकोण में ही विकसित हुआ है । यह रूप गर्विता नारी के अहं का उपन्यास है 'पन्ना' इसी के विपरीत पूर्ण समर्पिता नारी है । रूप गर्विता और पूर्ण समर्पिता नारी का चित्रण इसी उपन्यास के द्वारा वाजपेयी जी के एक और 'विचार' को मूर्त रूप प्रदान करता है । 'सपना बिक गया' की नायिका 'राका' दुष्यन्त के विवाह पूर्व मातृत्व की कथा है जिसे दुष्यन्त को प्रेम करने वाली शैल के त्याग, सहयोग और करूणा ने अभिभूत कर दिया है ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के नारी पात्र प्रेम और वासना को अभिनव दृष्टिकोणों से बांधे रहते है । उनका जीवन और मनोविज्ञान पूर्णरूप से लौकिक और नैसर्गिक होते हुए भी भावी जीवन के आदर्श को नही छोड़ पाता । 'वासना से परे' उपन्यास में जीवन के समस्त अच्छे - बुरे यथार्थ के साथ लेखक का मानना है कि मनुष्य में उदात्तवृत्ति भी रहती है ।अनुपम - अभिलाषा के कथा- प्रसगों में काम - वासना की क्षुद्र- वृत्ति के स्थान पर उदात्त मूल्यों को प्रश्रय दिया गया है । लेखक ने इस मत्तव्य को अभिव्यक्त करते समय प्रेम की सात्विकता को स्पष्ट किया है-

"प्रेम का मन्दिर तो सदा एक ही होता है । हाँ, उस तक
पहुंचने के रास्ते अलग- अलग हो सकते हैं । यह जरूरी
तो नहीं कि हार्दिक मिलन के लिए अलग - अलग
अस्तित्व वाले स्त्री- पुरुष, पति - पत्नी ही हों । और यह
भी आवश्यक नही कि उनके मिलन की अन्तिम परिणति
देह- रस प्राप्ति तक ही सीमित है । ...... देवर भाभी का
सम्बन्ध तो वैसा ही पवित्र होता है जैसा लक्ष्मण और
सीता का रहा है । इस नाते तुम मुझसे छोटे हो जाओगे
और तुम्हें मेरे पैर छूने पड़ेगे ।"

१. चलते चलते पृ. १००

वाजपेयी जी का प्रत्येक उपन्यास प्रेम मूल से ही विकसित हुआ है और नारी चरित्र के जितने विविध रूप इन उपन्यासों में प्राप्त है उतने अन्यत्र नहीं मिलते।

पुरुष पात्र :

बाजपेयी जी के उपन्यासों के पुरुष पात्र सीधे - साधे स्वस्थ्य सुन्दर मध्यमवर्गीय नव युवक है। वे अपने ही सगे सम्बन्धी परिजनों द्वारा या तो उपेक्षित है या फिर शोषित। ये पात्र समाज- सुधार के प्रति संकल्पित है किन्तु प्रेम या विवाह में उलझ कर रह जाते है। 'दो बहिनें' उपन्यास में ज्ञान प्रकाश अपने पिता वेदान्ती रावसाहब का घर केवल इसलिए छोड़ता है क्योंकि समाज - सुधार विषय पर पिता - पुत्र दोनों में मतभेद है किन्तु वही विधवा जानकी की पुत्रियों के प्रेम में आबद्ध हो जाता है। आशा को चाहते हुए भी वह प्राप्त नहीं कर सका और लता को अपनाकर वह सुखी नहीं हो सका। इस उपन्यास में क्या प्रायः प्रत्येक उपन्यास में प्रेम का त्रिकोण एक पुरुष और दो नारियों के बीच में सामान्यतः पाया गया है। तथापि ऐसे भी उपन्यास है जिनमें नारी पात्र - विवाहित नारी अपने पति का परित्याग कर अपने प्रणयी के संग जाने के लिए पूर्ण रूप से तैयार है। एक नारी और दो पुरुष, दो पुरुषों में से एक का चयन करना - बुद्धि और भावना का द्वन्द्व है। इसके साथ ही कही दो पुरुष- निखिल और कमलनयन - एक ही नारी शकुन्तला के प्रति आकर्षण विकर्षण की कहानी बनाते है पिपासा। ' वाजपेयी जी के उपन्यासों में विवाहेतर प्रेम प्रसंगों की भरमार है शायद ही कोई ऐसा उपन्यास हो जिसमें प्रकारान्तर से ये सम्बन्ध अभिव्यक्त न हुए हों। किन्तु वाजपेयी जी आदर्शवादी उपन्यासकार है इसलिए उनकी नायिकाओं की आकाक्षाएँ अतृप्त रह गई है। इसी प्रकार पुरुष पात्रों में भी दो वर्ग है - भावुकता और कामुकता प्रधान पात्र और समाज सम्मत मूल्यों के प्रतिष्ठाता इसे दूसरे शब्दों में समाज का जो यथार्थ है वह कामुकता प्रधान वातावरण को उद्वेलित किए रहता है और जो समाज सापेक्ष है वह लेखक के साथ आदर्शवादी बन जाता है। ये आदर्शवादी पात्र सदा मानवतावादी ही रहे है।

वाजपेयी जी के पुरुष पात्रों में मानवीगुण हैं तो दुर्बलताएँ भी है क्योंकि ये पुरुष पात्र व्यक्ति हैं 'टाइप' नहीं। इसीलिए इन पात्रों में कहीं - कहीं लेखक बोलने लगता है। विहारी बाबू, राजीव, ज्ञानचाचा (विश्वास का बल) निखिल, वैशम्पायन (सूनीराह) दिलीप, दादा ज्योतिस्वरूप, गिरधारीलाल (राजपथ) आदि पात्र व्यक्ति निष्ठा और अपने सिद्धान्तों के प्रति जागरूक हैं। 'सूनीराह' के गोपाल बाबू कापुरुष और कामुकता के प्रतीक है पर अनुताप के पश्चाताप से वे भी मानवी गुण सम्पन्न लगने लगते है। पागल स्वामी का चरित्र अद्वितीय और दृढ़ चरित्र के स्वामी का चरित्र है वह

भले ही गोपाल बाबू की जारज संतान हो किन्तु वह विरक्त होते हुए भी सात्विक और पवित्र पात्र है। वह पापी के साथ समझौता नही करता भले वह उसका पिता ही क्यों न हो। 'सूनी राह' उपन्यास में चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह कहना प्रत्ययातीत नही होगा कि यह एक व्यंग्यात्मक उपन्यास है जिसमें लेखक ने तरुण युवकों के खोखलेपन, चंचल मनः स्थिति अकर्मण्यता और निःस्सार भावुकता का चित्रण किया है। यह उनकी कल्पना प्रवण मानसिकता और शारीरिक अक्षमता और क्षीण संकल्पों पर तीव्र व्यंग्य हैं।

'अधिकार का प्रश्न' प्राचीन परम्पराओं के प्रतीक काशीबाबू और महावीर का चित्रण करता है, आधुनिकता के प्रतीक देवेन्द्र का चित्रण है।इन तीनों के प्रतिनिधि पात्रों से वे परम्परा और वर्तमान तथा भविष्य के सम्भाावित समन्वय की कल्पना करते प्रतीत होते है।

'चलते - चलते' उपन्यास अतियथार्थवादी है जहां सामाजिक वैषभ्य, वैधव्य, अनाचार और शोषण तो है ही, यौन कुण्ठा, सौन्दर्य, आंकर्षण भी इतने अधिक उभर कर आए है कि वह नायक राजेन्द्र के मनः संसार को झकझोर देने में समर्थ है। लाली का अनावृत वक्षस्थल और जमुना का वस्त्र फाड़कर नंगी छाती दिखाना मनोविकार ग्रस्त भले ही लगे पुरुष पात्र को भी दोषी बना सकता है। पुरुष पात्र यदि फिर लघु लगने लगें तो आश्चर्य कैसा?

पतवार (राजपथ) गांधीवादी विचारधारा के प्रतीक दिलीप द्वारा बाढ़ग्रस्त पीड़ितों की सेवा-व्रत से प्रारम्भ हुआ है। किन्तु यही दिलीप कुण्ठाग्रस्त व्यक्तित्व होकर रह गया है। 'निमंत्रण' का गिरधारी देश सेवा के हित जेल यात्रा को स्वीकार कर लेता है। गिरधारी एक पत्र का निर्धन सम्पादक है। वह मालती को प्रेम कर सकता है परन्तु, वह स्थूल वासना की अपेक्षा अपने आदर्श की रक्षा करने के लिए कृत संकल्प है। दूसरी ओर विनायक का चरित्र है- निर्धन होने पर भी प्रगतिवादी स्वभाव के कारण परम्परा और रुढ़िवादी विचारों की पराधीनता को अस्वीकार कर वह मालती के चरित्र को लेकर चलते प्रवाद की चिन्ता किए बिना उससे विवाह कर लेता है। वस्तुतः लेखक पूंजीवादी समाज में दरिद्रता के ताण्डव के बीच मानवीय सदाचार की सम्भावना खोजता है। विपिन यदि एक कर्मशील देश सेवक है तो डा. ललित एक असफल प्रेमी। इन्ही तन्तुओ से बुना गया है 'निमंत्रण' उपन्यास।

गुप्तधन के पात्र द्विआर्थक प्रतीक सार्मथ्य के प्रतीक है गुरुदेव गौरीशंकर गुरु ही है। सत्य, ज्ञान, वेद पुरुषपात्र है और चेतना माया, करुणा आदि नारी पात्र। सम्पूर्ण उपन्यास अपने घटना क्रम में

वैचारिक क्रान्ति का पोषक और प्रतीक पात्रों के चरित्र विकास का मौलिक अर्थ -व्यञ्जक उपन्यास है।

'विश्वास का बल, 'यथार्थ से आगे' और 'अधिकार का प्रश्न' वाजपेयी जी के उतरकाल के ऐसे उपन्यास है जिनमें मनोभावाभिव्यक्ति का आधार मनोविज्ञान है और भारतीय संस्कृति के मूल में नैतिक मानवतावादी विचारों की उदात्त स्थिति है। अतः इन उपन्यासों का उद्‌देश्य परक अर्थ भी है। 'अधिकार का प्रश्न' उपन्यास न तो घटना प्रधान है और न चरित्र प्रधान, वह वातावरण प्रधान है अतः वर्णन प्रधान भी है। काशीबाबू ईश्वर भक्त और अस्तिक आस्थावादी पात्र है जिनका आदर्श है-

ईश्वरः सर्वभूतानां ह्रद्देशेजुर्न तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ानि मायया॥

जिसके मूल में शेक्सपीयर के नाटक एज यू लाइक इट में वर्णित जीवन- जगत का सत्य अभिव्यक्त है। 'उनसे न कहना' विजय ब्रजमोहन और राजेश्वरी के रोमांटिक त्रिकोण को प्रकट करता है किन्तु इसमें मानव मूल्यों की स्थापना के लिए किया गया उत्कृष्ट प्रयास भी है।

वाजपेयी जी के पात्रों की एक दैवगति और है जहां पात्र की अनुपयुक्तता प्रतीत होने लगती है वाजपेयी जी उसे या तो आत्महत्या के जघन्य पाप में डाल देते है या फिर उसे देश निकाला दे देते है। चाहे वह पात्र पुरुष हो चाहे नारी। आत्महत्या करने वाले पात्रों से उत्पन्न सामाजिक सन्देश तो नकारात्मक है ही, साथ ही वह अस्वाभाविक भी प्रतीत होता है। अतः ऐसे पात्रों का चित्रण प्रभावहीन प्रतीत होता है।

सामाजिक बोध और राष्ट्रचिन्तन

'पतिता की साधना' उपन्यास में एक स्थल पर वाजपेयी जी ने लिखा है - 'दुनियां वही जानती है जो ऊपर से देखती है, भीतर से देखने की तमीज दुनियां कब सीखेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।'१ यदि अन्तर्द्वन्द्व से देखा जाए तो अन्तर्विरोध भी अनेक मिलेंगे। जो हमें बाहर से दिखाई दे रहा है ठीक उसके विपरीत हमें मानव- मन की दशा का ज्ञान होगा। 'चलते - चलते' उपन्यास में भी राजेन्द्र का यही अनुभव है- राजेन्द्र का नहीं यह वाजपेयी जी का मन्तव्य है।"जब प्रत्येक रुदन के आगे - आगे हास उल्लास की मृगतृष्णा है, जब प्रत्येक सौरव्य एवं आनन्द के पीछे हाहाकार, चीत्कार

अश्रुवर्षण और मृत्यु की भयानक से भयानक विभीषिकाएँ, तब सुख शांति का स्थायित्व एक स्वप्न ही तो है।"१ इसी वेदना का उद्‌घाटन ही वाजपेयी जी का मन्तव्य है। वाजपेयी जी जीवन को व्यवस्थित, पूर्ण नियोजित था कि उपयुक्त रूप से परिभाषित नहीं करते अपितु समस्त कार्य व्यापार किसी भी स्थिति में गतिशील रहें यही समाज की नियति है। नर - नारी, पशु- पक्षी, ट्रक, चिमनी, धुवाँ सभी असम्बद्ध होते हुए भी कहीं न कहीं समाज के किसी एक भाग का अंग बन कर उस वातावरण की सृष्टि करने में सक्षम है। मकान में चिक डालना है, चादर मैली है, तकिया उसके नीचे रखकर छिपाया जा सकता है यह सब समाज के एक परिवार की आर्थिक दुरावस्था का ही चित्र है और यही उनके उपन्यासों का वातावरण है।

वाजपेयी जी के उपन्यांसों में ऊपर से जीवन गति अस्त - व्यस्त अवश्य प्रतीत होती है पर यही वास्तविक सामाजिक सन्दर्भो में 'संघर्ष है। वाजपेयी जी ने मात्र दो सामाजिक बिन्दु अपने उपन्यासो में आधार बनाए हैं- एक है अर्थ और दूसरा है काम। आर्थिक विषमता, दुरावस्था और उत्पीड़न समाजगत वर्ग विभाजन की राजनीतिक पृष्ठभूमि है और काम भावना सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य का मुख्य विषय रहा है। प्रत्येक उपन्यासा में प्रेम- वासना- कर्तव्य का नायक और नायिका नायिकाओं का त्रिपक्षीय संघर्ष है। विषय चाहे काम हो या अर्थ अन्ततः वाजपेयी जी मानवतावादी विचार की दृढ़ता से आश्वस्त करने से नहीं चूकते। इस मानवतावादी दृष्टि ने व्यक्ति और समाज में सन्तुलन बनाये रखने का प्रयास किया है।

वाजपेयी जी पर व्यक्तिनिष्ठ होने का आरोप भले ही लगाया जाये पर वे मनुष्य को समाज की इकाई ही मानते है और सभी उपन्यासों में एक पारिवारिक परिवेश में पति- पत्नी, पिता- पुत्र, भाई - बहन के नाते -रिश्ते वस्तुतः काम अथवा यौन सम्बन्धों पर ही आधारित है। यौन सम्बन्धों को सहज स्वीकारने से काम कुण्ठायें तो बचती है पर समाज के संगठन पर प्रभाव पड़े बिना नही रहता। मानवीय काम कुण्ठाओं के मनोवैज्ञानिक हल प्रस्तुत करते हुए वाजपेयी जी अतृप्ति, कामना, लालसा आदि काम चेष्ठाओं को खुलेपन से वर्णित कर (चलते - चलते) पात्रों का अध्ययन करते हैं। साथ ही पात्रों की नैसर्गिकता को ध्यान में रखकर उपन्यास को यथा सम्भव सुखान्त बनाना चाहते है। जब कभी वे कोई निराकरण नहीं खोज पाते तो उसे ईश्वरीय देन के रूप में प्रस्तुत कर देते है। 'सूनी राह' में निखिल का कथन है-

"संयोग को मैं ईश्वरीय देन मानता हूँ। मनुष्य के प्रयास में उसका कोई महत्व नहीं"२ इन संयोगों में संयोग - वियोग, दुर्घटना, मृत्यु, आत्महत्या, सभी सम्मिलित है।

१- 'चलते चलते' पृ. २६९

वाजपेयी जी नारी मनोदशा के कुशल चित्रकार है 'पतिता की साधना' उपन्यास में नन्दा विवाह के उल्लास को भोग भी न पाई थी कि उसे तुरन्त ही वैधव्य की यंत्रणा भोगना पड़ी और उसकी समस्त अतृप्त आकांक्षा में कामनायें और लालसायें चिरवेदना बनकर रह गई और उस नैरश्य पूर्ण जीवन में वह जड़वत् हो गई। लेखक का कथन है-

> "जो लोग दुःख के आघात को आसुओं की राह निकाल दिया करते है, संसार समझता है वे बहुत अधिक दुःखी है, उनके उत्पीड़न की थाह नहीं है। किन्तु, इसी संसार में ऐसे भी कुछ लोग है जो व्यथा को निकालते नहीं, और न निकलने ही देते है, वरन् अपने ही भीतर उसे पड़ी रहने देते है। ऐसे व्यक्तियों का हृदय कितना गहरा होता है - कैसा महान।"१

इसी नन्दा के सौन्दर्य और यौवन सौष्ठव पर रीझ कर उसी का देवर हरी उसे अपनाने को तैयार हो जाता है। नैकट्स के रहते दोनों में यौन सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है। वह भूल गया कि नन्दा विधवा है, वह गरल है जिसका पान सर्वथा निषिद्ध है। वस्तुतः इस चरित्रांकन में वाजपेयी जी का मन्तव्य हरी और नन्दा के मानवीय स्पन्दन को प्रस्तुत करना था।

'काम' के आदेश का सजीव चित्रण 'टूटते बन्धन' उपन्यास में मनोभावाभिव्यजंक है। यशवन्त अपनी गर्भिणी पत्नी बेला से मिलने ससुराल गया था कि बेला की कुमारी सखि 'मुरली' के मादक - यौवन पर रीझकर उसके साथ दिन - रात भावावेग में काम - पीड़ित रहा। वासनापूर्ति के उपरान्त यही यशवन्त अवसाद से घिरा पश्चाताप करता है। वाजपेयी जी ने लिखा है-

'यह देह धर्म कितना विलक्षण घृणित व्यापार है। अपूर्ण रहने पर कितना मनोहर और पूर्ण जाने पर कितना विरक्तिमय, निर्मोही, जड।[२]

इसी प्रकार 'सूनी राह' में निखिल के प्रति समर्पित करूणा अपने पति सत्याचारण का उज्ज्वल रूप जानकर निखिल को छोड़कर पति के साथ चली जाती है। निखिल का कथन है - प्रेम को भी एक लाज होती है, उसकी भी एक मर्यादा है।१

वाजपेयी जी का सामाजिक स्वरूप उन्हीं के शब्दों में अभिव्यक्त है। राजपथ वस्तुतः उनके द्वारा अनुभावित सत्य की प्रस्तुति है और इसीलिए वह प्रभावकारी भी है-

१. पतिता की साधना - पृ. ४३
२. टूटते बन्धन - पृ. १७४

समाज सन्दर्भ में वाजपेयी जी का मन्तव्य है कि - "सामाजिक बल के मूल में भी व्यक्ति विशेष का बौद्धिक बल निहित रहता है। वक्तव्य कला में एक ऐसा प्रभाव होता है कि अकेला होने पर भी व्यक्ति प्राय: अपने तर्क संगत उत्तरों की भूमिपर सारे समाज को एक साथ धराशायी कर देता है। विशिष्ट प्रतिभा के द्वारा वह सारे जन - समुदाय को गुच्छे में पड़ी हुई तालियों की भांति अपनी एक उंगली पर नचाया करता है। इस अवस्था में एक ही व्यक्ति सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधि बनकर अपना व्यक्तिगत संघर्ष ही नही, विभिन्न व्यक्तियों का पारस्परिक संघर्ष भी शान्त किवां समाप्त कर देता है।[१]

उपर्युक्त कथन के सन्दर्भ में उपन्यासों के नायक/ मुख्य पात्र संघर्ष प्रेमी, विचारवान और पटु है। वे समाज के मार्ग दर्शक क्रान्तिकारी पुरुष है जो पगडण्डियां बनाने में भी नहीं चूकते। हरी (पतिता की साधना) राजीव (विश्वास का बल) दिलीप (राजपथ) निखिल (सूनीराह) पागलस्वामी - अविनाश - (सूनीराह) राजेन (चलते चलते) विजय (उनसे न कहना) प्रदीप (यथार्थ से आगे) ऐसे ही क्रान्तिकारी पात्र है।

यह अवश्य है कि वाजपेयी जी ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर सामाजिक चिन्तन किया और वही उनके उपन्यासों में विकीर्ण हैं। मनोविज्ञान के कारण ही लोग उन पर व्यक्तिवादी होने का आरोप लगाते है किन्तु, वे भूल जाते है कि सामाजिक मनोविज्ञान ही अन्तत: मानवतावादी दृष्टि देता है जो उपन्यासों का अभिप्रेत है, उद्देश्य है। स्वयं वाजपेयी जी ने व्यक्तिवादी होने के विरोध में उतर दिया- "किसी सामाजिक कृति के माध्यम से जीवन के क्रम - विकास का चित्रण करने वाला कृतिकार कभी व्यक्तिवादी नहीं होता।"

राष्ट्र समाज में ही समाहित है। वाजपेयी जी के पात्र दिलीप/हरी कहीं न कहीं राष्ट्रभाव से प्रेरित है। गांधीवादी चिन्तक के रूप में वाजपेयी जी ने अपने पात्रों में खद्दर पहनने की भावना, समाज- सेवा का प्रणयन तथा राष्ट्रीय चिन्तन धारा में संलग्न रहना व्यक्त किया है। शिक्षा, गरीबी, नारी अधिकार आदि अनेक समस्यायें प्रकारान्तर से उपन्यासों की कथा में या कि पात्रों के चरित्र में वर्णित है। हां, वाजपेयी जी ने राष्ट्रीय क्रान्ति, जुलूस हिंसा, स्वतंत्रता आदि को उपन्यासों में चित्रित नहीं किया है।

****

१. राजपथ की भूमिका से

अध्याय ४ - भगवती प्रसाद वाजपेयी की उपन्यास - कला

(उपन्यासकला, वस्तु विधान, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, सामाजिक आधार- वर्ग संघर्ष, सांस्कृतिक परिवेश)

कला और उपन्यास - कला :- कला के विषय में अरस्तु के समय से ही विचार होता आ रहा है। हीगेल ने कला को यथार्थ की मानसिक प्रस्तुति कहा है।[१] अरस्तु ने कला को लालित्य और उपयोग की दृष्टि से विभाजित कर व्याख्यायित किया है। ललित कला में वास्तु, मूर्ति, चित्र, संगीत और काव्य कलाएँ आती है अर्थात, दृष्टि और श्रवण से कला का आनन्द उठाया जा सकता है। वास्तु, मूर्ति और चित्रकला दृष्टि जगत से आनन्द सृष्टि करती है जबकि संगीत और काव्य श्रवण प्रमुख हैं। तात्पर्य यह है कि जिस वस्तु की रचना में जितने अधिक उपकरण होंगे वह ललित कला सौन्दर्य के क्रम में उतनी ही नीची समझी जाएगी। इससे निष्कर्ष निकलता है कि काव्य कला सर्वश्रेष्ठ ललित कला है।

कला का सृजन नित्य प्रति विकासगामी है। और उपन्यास इसे मूर्त रूप प्रदान करता है। अंग्रेजी उपन्यासकार कथाक्रम की तुलना में इस शिल्प को महत्व देते हैं जो कथावस्तु को अपने शिल्प- कौशल से सजाकर प्रस्तुत कर मानसिक आनन्द को उत्पन्न करते है।[२] उपन्यास की कथावस्तु क्या होना चाहिए? इस विषय में लेखक और समालोचक एक मत है। उपन्यास किसी भी विषय पर लिखा जा सकता है, उसमें कथावस्तु के क्षेत्र, विषय या कि वस्तु का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। फिलिप गुडाला की मान्यता है कि कोई भी मनुष्य किसी भी विषय पर किसी भी मनुष्य से उपन्यास में कुछ भी कहला सकता है।[३] यह विषय इतिहास, कानून, श्लील- अश्लील शब्दावलि अथवा यौन रहस्य के विषय भी हो सकते है।[४] घटनायें इस प्रकार प्रस्तुत की जानी चाहिए कि वे मात्र कल्पना जन्य कला न रहे बल्कि ऐसी कला हों जो जीवन के यथार्थ को स्पष्ट करें। कला समीक्षक मैथ्यू आर्नल्ड का कथन है कि उपन्यास कला में जो खो देता है उसे जीवन के यथार्थ में प्राप्त करता है।

1. Hegel- Art is the presentation of the real is its mental aspect.
2. Fieding - The execllenee of the mental entertainment consist less in the subject than in the author's skill in well dressing it up (Tom Jones).
3. Philip Guadala- The sunday times - 27th may 1928.
4. Scolt James - Making of Literature P. 363.

वाल्टर रेले ने उपन्यास को सौन्दर्य से व्यवस्थित कलाकृति कहा है।[१] ल्यूवॉक का मानना है कि उपन्यास जीवन तो नहीं है किन्तु जीवन की सत्यता और यथार्थता की प्रस्तुति है।उपन्यास की प्रस्तुति का स्वरूप वही है जो कथा वस्तु को समेट ले और कथावस्तु भी वही है जो सुन्दर स्वरूप में अभिव्यक्त हो जाये। कथावस्तु ऐसी हो जिसे उपन्यासकार की दृष्टि सम्पूर्ण धर्म से निर्वाह कर सके और तब उसकी कृति जीवन हो उठेगी।[२]

उपन्यासकार अनेक प्रकार से अपनी कथावस्तु को प्रस्तुत करता है- जिनमें (१) वर्णन शैली (२) नाटकीय शैली (सम्वादशैली) (३) प्रतिवेदन शैली (४) पात्र कथन शैली प्रमुख हैं। वर्णन शैली में लेखक स्वयं सम्पूर्ण घटना को वर्णित करता है जो सम्पूर्ण आख्यान को चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत कर देती है। नाटकीय/ सम्वाद शैली में लेखक निरपेक्ष हो जाता है और कार्य व्यापार से ही कथावस्तु सृजित होती रहती है। प्रतिवेदन में लेखक स्वयं निरपेक्ष रहता है किन्तु, वह अपने प्रत्यक्ष अनुभवों को अभिव्यक्त करता है जबकि वह अपने पात्रों के मुख से उनके पीछे खड़ा रहकर सम्पूर्ण घटनाक्रम को यथार्थ जीवनानुभव से संयोजित करता है।[३] उपन्यासकार की सफलता इसी में है कि पाठक उसके कथानक को वास्तविक जानकर, स्वीकार कर, सत्य समझे, ल्यूवॉक के शब्दों में, उपन्यासकार हमें अपने स्थान से उछाल दे।[४]

उपन्यास की कथावस्तु व्यक्तिपरक हो सकती है, वर्गगत हो सकती है; यथार्थवादी या कि रोमांटिक, नैसर्गिक या कि कोई भी। वे बार - बार लिखी जाती है, लिखी जाती रहेंगी, उनमें उनका पूर्व रूप न दोहराया जायगा। उनकी शैली, वर्णन, व्यवस्था उनमें साम्य और वैषम्य विस्मय उस कथानक में बदलते रहेंगे। उनका सुन्दरतम और मानवीकरण और हजारों अनेकानेक विधियों नए - नए रूप रखकर उपन्यास का कलेवर सजाएंगे यही उपन्यास में चरित्रांकन कहा जाता है यही उसकी विशिष्ट रचनाधर्मिता है।

किन्तु उपन्यासकार के लिए भी कुछ आवश्यक है जिससे वह अपनी कृति को सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत कर सके- स्काट जेम्स ने अपनी पुस्तक 'मेकिंग ऑफ लिटरेचर' में इन्हें अद्धृत किया है- (१) लेखक स्वयं ज्ञान- प्रतिभा सम्पन्न हो, (२) वह सतत अध्ययन रहे भी हो, (३) वह मानवीय चरित्र का अध्ययेता हो और (४) वह स्वयं संवेदनशील हो- होरेस का कहना था कि वही लेखक जो हमें करुणा से रुला देता है स्वयं भी अवश्य रोया होगा। तभी वह सफल है।[५]

1. Walter Raieigh- " Firmely ordered artistic Structure".
2. Lubbock- The Craft of Fiction.
3. Scolt faunes- Makiue of Literature P. 369.
4. Lubbock- The craft of Fiction.

कला मीमासंकों ने जो निकष हमें दिए है उन्हीं पर हम भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों का परीक्षा करेंगे । वाजपेयी जी ने लगभग ४५ उपन्यासों की रचना की है, ३०० कहानियाँ और बाल साहित्य, एक कविता संग्रह और दो नाटक इतना ही उनका साहित्य है ।

वाजपेयी जी के इस विपुल कथा साहित्य में , कथावस्तु के आयाम में अनेकानेक हैं किन्तु मुख्यधारा में उनका ध्यान प्रेम के विविध रूपों और उसकी संवेदनाओं में है जो साधारण पाठक की पकड़ के बाहर नहीं है । उपन्यासकार वाजपेयी ने उच्च मध्यम वर्ग और मध्यमवर्ग की पारिवारिक संवेदनाओं को चित्रित किया है , विशेष रूप से नारी पात्रों की प्रेम मूलक समस्या को विभिन्न पात्रों के चरित्र में, परिवेश में, मानसिकता में और प्रेम तरंगों में डूबते, उतराते चित्रित किया है । प्रेम में आकर्षण है- इस सीमा तक कि विवाहिता पत्नी करुणा अपने पति सत्याचरण को निखिल के लिए छोड़ने को तत्पर है । दो नारियों के मध्य एक पुरुष, दो पुरुषों के मध्य एक नारी, नारी की मौन तपस्या या कि उसकी उच्छृखलता, यौन आवेगों में विवाहपूर्व मातृत्व, या कि विजातीय प्रेमावेगों को दूर करने के लिए बेटी को दूर भेजना उपन्यासों की बहुकोणीय दृष्टि से सृजित कथा संसार की रचना वाजपेयी जी की ही सामर्थ थी । वासना और कर्त्तव्य में कर्त्तव्य की प्रमुखता से उत्पन्न आदर्श वाजपेयी का कथा-उद्देश्य रहा है ।

वाजपेयी जी पर नारी- विषयक विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक तथा संवेदनात्मक समस्याओं को चित्रित करने में यदि शरत्चन्द्र या टैगोर का प्रभाव लक्षित होता है तो आर्थिक विषमताओं में जूझ रहे पात्र, ट्यूशन कर पेट भर रहे प्रतिभा सम्पन्न युवक, चिक या चादर के मैले होने के अहसास पर भी महत्वांकाक्षा और अपने वैचारिक चरित्र को बनाए रखने वाले तरुण, अभिजात्य वर्ग की गुलामी न कर अपने को स्वावलम्बी बनाने वाले नवयुवकों का सजीव चित्रण वाजपेयी जी की अपनी आर्थिक विषमताओं की अनुभूति थी जिसके लिए वे न तो कभी समझौता स्वयं कर सके और न ही अपने पात्रों को समझौता किए जाने की विवशता उत्पन्न की । इसके स्थान पर उच्च मध्यमवर्ग की नारियां ही अर्थ - वैषम्य को प्रेम के लिए मिटाती प्रतीत होती है ।

वाजपेयी जी के प्रारम्भिक उपन्यासों को छोड़कर प्राय: सभी उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विकास किया गया है । पात्रों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों में चित्रित कर उनके जीवन विकास की दिशाओं को मानवीय संवेदनाओं में परिवर्तित कर वाजपेयी जी ने पात्रों के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है । इस क्षेत्र में वे प्रेमचन्द के पात्रों के चरित्र को आधार बनाकर गांधीवादी विचार पद्धति से प्रभावित प्रतीत होते हैं

वाजपेयी जी ने कही कहीं पर पात्रों को बीच राह में ही छोड़ दिया है चाहे आत्म हत्या के ब्याज से या कि मृत्यु के द्वारा जबकि शायद उनकी उपन्यास कला को इस व्यापार की अपेक्षा नहीं थी। वाजपेयी जी के पात्र आन्तरिक/आभ्यान्तरिक नैतिक समस्याओं में भले ही उलझते सुलझते रहे हो किन्तु, उनके सिद्धहस्त कला- कौशल से अन्त में वे मानवता से सम्पृक्त हो गए है। वाजपेयी जी ने अपने कला कौशल से ही सामाजिक चेतना को जगाया, कुण्ठाओं को मनौवैज्ञानिक रुप से अंकित किया और सम्पूर्ण उपन्यास को एक सांस्कृति- संक्रान्ति की संज्ञा देकर चेतन मानव की अभिशप्त और विकृत जीवन शैली को परिवर्तित करने की चेष्ठा की है।

वाजपेयी जी की भाषा ने उनकी उपन्यास कला को एक स्वाभाविकता प्रदान की है। भाषा ऐसा सशक्त साधन है जो कथावस्तु के मन्तव्य- सम्प्रेषण में सर्वाधिक सहायक है। पात्रानुकूल परिमार्जित, ग्राम्य, नारी - जनोचित, पौरुषेय अवसरानुकूल मुखर तथा लज्जा- शील- संकोच को अभिव्यक्त करने हेतु मौन का प्रयोग लाक्षणिक होकर सजीव हो गया है। मुहावरे, लोकोक्तियां कथोपकथन और नाटकीय संवाद शैली ने उपन्यासों को प्राणवत्ता प्रदान की है। अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों तथा सम्वादों को स्वाभाविक और पात्रोचित रुप में ही प्रयोग किया गया है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कला सौष्ठव मात्र एक बिन्दु से ही अभिव्यक्त किया जा सकता है कि कोई भी उपन्यास यदि एक वार प्रारम्भ कर दिया जाय तो उसे आद्यान्त पढ़कर ही पाठक समाप्त करते है जिसे ल्यूवॉक ने पाठक को उछलना कहा है। लगता है, पाठक के आस- पास ही वह कथा- वृत्त धूम रहा हो। वाजपेयी जी इस कला में पूरी तरह दक्ष है। करुणा के प्रसंग में यदि वह पाठक को रुला सकते है तो पता नहीं स्वयं भी कितने बार आंसू बहा चुके होंगे।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में वस्तु विधान

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास साहित्य के कथा- सौष्ठव को भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के दो सन्दर्भों में देखना समीचीन होगा।

स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों का प्रारम्भ १९२६ में प्रकाशित प्रेम- पथ से हुआ था और जो निमंत्रण के प्रकाशन १९५० तक विस्तृत ११ उपन्यासों में वर्णित है। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द की विषय वस्तु की भांति ही प्रेम की सामाजिक समस्या और वासना के साथ द्वन्द्व तथा कर्त्तव्य के लिए यथार्थ से आदर्श स्थिति की ओर जाने का एक सिलसिला है। इसी बीच १९२९ में प्रकाशित मुस्कान का त्यागमयी शीर्षक से १९३२ में पुनः प्रकाशन भी हुआ। तब मुंशी प्रेमचन्द का गोदान प्रकाशित नहीं हुआ था। इस काल का चिन्तन पक्ष भी अपेक्षाकृत परिवार की सीमाओं में अधिक आबद्ध था। अनाथ पत्नी १९२८ में प्रकाशित हुई जिसमें ब्राह्मण समाज में व्याप्त कुरीतियों के चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इस उपन्यास की भूमिका विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक' ने लिखी हैं। रजनी अज्ञात कुल शील की ब्राह्मण पालित कन्या है और इसी अज्ञात कुल के कारण उसकी बारात वापिस लौट जाती है- मानवीय पक्ष को लेकर इसी कन्या को वाजपेयी जी ने स्वावलम्बी बनाया है यही इसका उज्ज्वल पक्ष है। कौशिक जी ने उपन्यास की अस्पष्टताओं की ओर भी संकेत किया है सुशील जैसे छोटे भाई का अन्त में उल्लेख, माता की मृत्यु या जीवन का रहस्य बना रहना अथवा सातवें परिच्छेद में भगवान कृष्ण की घटना का निरर्थक उल्लेख अथवा अकारण उपन्यास का विस्तार तथा चित्र के पीछे कागज लगाकर कुछ रहस्यमय स्थिति उत्पन्न करना उपन्यास- कला के साथ न्याय नहीं है। अन्त मैं कौशिक जी ने कान्यकुन्ज ब्राह्मणों की उस परम्परा का उल्लेख किया है जिसमें भाभी को भाभी ही कहा जाता है 'भाभी अम्मा' नहीं जो प्रायः बंगालियों में प्रचलित है। किन्तु ये सब ऐसे कारण है जो प्रारंम्भिक उपन्यासकार से होना स्वाभाविक थे। तथापि, उपन्यास का विषय और उद्देश्यपूर्ण निर्वाह प्रेमचन्द - कौशिक जी की विचारधारा से सामजंस्य रखते है।

'पतिता की साधना' १९३६ में प्रकाशित हुआ। प्रेमचन्द का गोदान भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ था। वाजपेयी जी का यह उपन्यास उनके उपन्यास लेखन का भील का पत्थर है क्योंकि तब सामाजिक परिदृश्य पहली बार उनके उपन्यासों का क्षेत्र बनकर सामने आया था।

'पिपासा' उपन्यास भी इसी वर्ष पूर्ण होकर प्रकाशन हेतु चला गया था जिसमें समाज के साथ मनोविज्ञान के सहारे पात्रों की निर्मिति को स्वाभाविक बनाया गया। किन्तु, प्रेम के व्यक्तिपरक अंग पर लेखक ने अपना ध्यान केन्द्रित किया प्रतीत होता है। यह उपन्यास भावनात्मक आवेग से अधिक प्रतीत नही होता। किन्तु, दो बहिनें' (१९४०) उपन्यास प्रेम त्रिकोणात्मक और अपेक्षाकृत अधिक जटिल परिप्रेक्ष्य की सृष्टि कर सका है इसे जटिल कहना स्वाभाविक है जब इसे सुलझाने के लिए एक पात्र की मृत्यु करवा दी जाती है। इसे और भी अधिक महत्व तब मिला जब इस उपन्यास का नाट्य रुपान्तर आकाशवाणी से प्रसारित हुआ।

स्वांतत्रोत्तर काल में १९५० से लगभग प्रतिवर्ष वाजपेयी जी ने एक या दो उपन्यास प्रकाशित किए है। उनका मूल विषय वही प्रेम वासना- कर्त्तव्य, अर्थ अभिजात्य, स्वाभिमान आदि चरित्र प्रधान रहे है। 'निमंत्रण' में समाज सापेक्षता है तो 'गुप्तधन' (१९५०) में दार्शनिक आवरण में पात्रों का सृजन हुआ है जो अन्ततः सत्य का अन्वेषण करते है। यह उपन्यास इण्टर कक्षाओं को पढ़ाया जाता रहा और इसी उपन्यास ने वाजपेयी जी को दस हजार रुपये दिए जिससे पहली बार उनका अर्थ प्रयोजन सिद्ध हुआ। १९५७ में यह 'एकदा' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ था। स्वातंत्रोत्तर काल के लगभग तीन दर्जन उपन्यासो में लेखक 'प्रेम' के विभिन्न आयामों, स्थितियों और मनोवृत्तियों का ही चित्रण करता रहा है। 'विश्वास का बल', 'सूनी राह', 'उनसे न कहना', 'दूखन लागे नैन', 'टूटा टी सेट', 'छोटे साहब' कुछ अच्छे उपन्यास है।

यह अत्यंत विचित्र लगता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के संक्रान्ति काल में इतनी विभीषिका विभाजन- काल में हुई, देश की मानवीय दुरावस्था, राष्ट्रीय संचेतना, सामाजिक संघर्ष, विस्थापितों की पीड़ा आदि अनेक ऐसे विषय थे जिनसे कोई भी संवेदनशील साहित्यकार प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। पाकिस्तान और चीन युद्ध की आतंकवादी गतिविधियों ने देश को झकझोर कर रख दिया किन्तु, वाजपेयी जी इन राष्ट्रीय सन्दर्भों से असम्पृक्त बने रहे और प्रेम- प्रंसगों की स्थितियां ही खोजते रहे। इस विषय को यदि ध्यान से देखें तो बाद के उपन्यासों का प्रभाव भी या तो पूर्व का राग- प्रेम - वासना- कर्म का त्रिकोण, नारी पुरुष और पुरुष नारियों का त्रिकोण या काम कुण्ठा, अर्थ- कुण्ठा और वृत्ति कुण्ठा के त्रिकोण के चित्रण में ही वाजपेयी जी का मन रमा रहा। यह अपेक्षा कि वे राष्ट्रीय जागरण और चेतना पर भी उपन्यास लिखते तो राष्ट्र- बोध के चिन्तन की एक और कड़ी उनके साहित्य में मिलती पर ऐसा हुआ नहीं।

वाजपेयी जी के उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

वाजपेयी जी के यथार्थ से आदर्श की ओर प्रवर्तन सहज ही नहीं हो सका है। वे समाज में ह्रासोन्मुख जीवन के कलाकार है। अतः उनकी अधिकतर रचनाओं में वस्तुपरक कला का दिग्दर्शन हुआ है। वे अपने मनोवैज्ञानिक ज्ञान की विवृति से जीवन की करुणासिक्त अगति का चित्रण करते है। अगति के यथातथ्य चित्रण से उत्पन्न करुणा से अभिभूत पाठक स्थिति से साक्षात्कार कर प्रतिक्रिया कर उठे तो वाजपेयी जी का प्रयत्न सार्थक है। उस वस्तुपरक चित्रण से भी लेखक आदर्शप्रवण है जिसका विकास उनकी अपनी कहानियों से हुआ है। उदाहरण स्वरुप 'अन्धेरीरात' कहानी की 'कजली' वेश्यावृत्ति की यथार्थ स्थिति में भी शारीरिक पावनता को कितनी कठोर यातना से बचाये रखती है-

> 'सिर से पैर तक वस्त्रहीन होकर कजली बोली- जो
>
> अपराध तुमने मुझ पर लगाए है, उनकी सफाई मेरे बदन पर
>
> पड़ी हुई इन काली, नीली, मिटी और बनी रेखाओं से
>
> पूछो, घावों के निशानों और जली हुई खाल की सफेदी
>
> से पूछा। रो मैं सकती नहीं, नहीं तो आसुओं से भी
>
> बहुत कुछ बतला सकती थी। था कभी आसुओं का सोता
>
> लेकिन अब वह सूख चुका है। इतने पर भी विश्वास न हो
>
> तो पुलिस के पुराने कागजों में दर्ज आत्मघात के मेरे
>
> प्रयत्नों से पूछ देखो।'

यह आदर्शवाद की विवशता का परिचायक है। लगता है वाजपेयी जी 'मोपासाँ' से प्रभावित यथार्थ में व्याप्त आदर्शवाद की स्वीकारोक्ति हैं।

जिस प्रकार मुंशी प्रेमचन्द ने कहानी से उपन्यास लेखन में पदार्पण किया, उसी राह पर वाजपेयी जी भी चले। यह ऐसा युग था जिसमें प्रेमचन्द और प्रसाद ने कहानी उपन्यास में सामाजिक दिग्दर्शन के चतुर्मुखी चित्रण को स्वरुप दिया और उनके बाद उनके अनुयायियों में जैनेन्द्र, भगतीचरण वर्मा और भगवती प्रसाद वाजपेयी प्रमुख रुप से जाने गए। जैनेन्द्र और वाजपेयी जी तो जैसे नारी- जीवन के विभिन्न रूपों उनकी अस्मिता, आर्थिक शोषण और मनोभावनाओं के अधिवक्ता ही बन गए। लोकमंगल की जो भावना रामचन्द्रशुक्ल ने तुलसी में देखी थी, वैसी ही प्रेमचंद ने

(कर्मभूमि और सेवासदन) समाज- सुधार के आयामो में और वाजेपयी जी के उपन्यासों में व्याप्त है। इसके साथ ही यथार्थ का जो चित्रण गोदान में हुआ है- स्पष्ट और वास्तविक जीवन का प्रतिनिधि परिचायक- वही प्रेम और कर्त्तव्य की समस्या को लेकर वाजपेयी जी के नारी पात्रो में अभिव्यक्त हुआ है। बस अन्तर इतना है कि प्रेमचन्द 'होरी' को विश्व - उपन्यास साहित्य में सर्वोपरि स्थान दे सके क्योंकि वह ऐसा पात्र है जो सर्वकालिक और सर्वदेशीय है- हार्डी में भी ऐसा पात्र नहीं है - वाजपेयी जी ऐसा कोई भी प्रतिनिधि पात्र अपने पचास उपन्यासों में भी, चाहे पुरुष हो या कि नारी पात्र, नहीं दे सके। वाजपेयी जी का प्रारंभिक उपन्यास प्रेमपथ (१९२६) ऐसा प्रतीत होता है सेवा सदन से अनुप्रणित है- इसीलिए भी उसका स्वर आदर्शवादी है। कर्मभूमि पर गाँधीवादी प्रभाव है तो वाजपेयी जी के राजपथ और तद्विषयक अन्य उपन्यासों पर भी गाँधी आदर्श की अनुगूँज सर्वत्र सुनाई देती है यद्यपि इनमें यथार्थ चित्रण की कोई कमी नहीं है।

वाजपेयी जी ने अपने जीवन के प्रवेश काल में समाज का जो कुरूप भोगा और देखा था या कि फिल्म जगत में जो अविश्वसनीय और कटु था उसे देखकर उनके मन में जो भी प्रभाव पड़ा हो या जिसके रास न आने पर वे फिल्म जगत छोड़कर चले आए हों, किन्तु, उन्होंने सदा समाज की सुन्दरता को याकि सुन्दर होने की सम्भावनाओं को अपने उपन्यासों में अवश्य देखना चाहा है। 'टूटा टी सैट' एक प्रतीकात्मक शीर्षक है किन्तु वस्तुतः वह समाज की टूटन से उत्पन्न ऐसी कुरुप स्थिति का यथार्थ है जिसने उनकी मान्यताओं को भी तोड़ दिया।

वाजपेयी जी ने समाज के वहिरंग की यथार्थता का उतना चित्रण नहीं किया जितनी अन्तरंगता का। यह निर्विवाद है कि वाजपेयी जी मानव- मन की छलछद्म पूर्ण विसंगतियों, आशा- आंकाक्षा, चिन्ता- शंका, कुण्ठा और निराशा के चित्रण को सर्वागीण रुप में चित्रित कर सके है। वाह्य द्वन्द्व की एक स्पष्ट सीमा है जिसे हम देख- सुन सकते है, किन्तु अन्तर्द्वन्द्व असीम है। इस असीम का चित्रण वाजपेयी जी ने किया है ऐसे जैसे स्वयं उसे भोग रहे है। यदि वे पाठक को करुणा से रुला सकते है तो स्वयं भी अनेक बार रोये होंगे। इसलिए उनके अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण अपेक्षाकृत सफल हो सके है और जिनके भावनात्मक परिवर्तन से यथार्थ की दिशा आदर्श की ओर चल पड़ी।

अन्ततः समाज की विभिन्न कुरीतियों से गुजरता हुआ भावनात्मक मनुष्य विडम्बनाओं और वर्जनाओं में मार्ग प्रशस्त करता हुआ तृष्णा, आंकाक्षा, ईर्ष्या आदि वृत्तियों को पार कर ध्वसांत्मक सामाजिक चेतना से उत्पन्न अतृप्ति को आदर्श की परिणति तक ले जाने का साहस वाजपेयी जी ही कर सकते है। इस दृष्टि से उनके उपन्यास यदि यथार्थ का चित्रण करते है तो आदर्श लक्ष्य की ओर मार्ग संधान भी करते है।

समाज में परम्परा से प्राप्त सहज ही जीवन के वे तत्व जिनमें मनुष्य के संस्कार, रीति, परम्परायें रुढ़ियां, रहन सहन, परस्पर सामंजस्य, सौमनस्य और वैमनंस्य आदि स्वतः ही उभर कर कथानक के स्वरूप और पात्र के चरित्र का निर्माण करते हैं, वे सब समाज की संस्कृति को अभिव्यक्त करते हैं। ये सांस्कृतिक तत्व अनायास ही कथा के साथ विकसित होने लगते है यदि सायास वातावरण सृजन के लिए लेखक इनको स्थान देता है तो कथानक की प्रवाहात्मकता तो प्रभावित होती ही है, कथा वस्तु का भी सहज विकास नहीं होता। ये सांस्कृतिक तत्व विम्बात्मक रुप ही ग्रहण करें तो उपन्यास की कथावस्तु के साथ पाठक अपनी कल्पनाशीलता से उन्हें ग्रहण कर आत्म साक्षात्कार करने लगता है। वाजपेयी जी के उपन्यासों में ये सांस्कृतिक विम्ब नैसर्गिक है अतः सहज ग्रहणीय भी है।

स्वयं वाजपेयी जी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पले बढ़े हुए है। उनके निवास- प्रवास का क्षेत्र उत्तर प्रदेश का कन्नौज, कानपुर लखनऊ, इलाहाबाद और महाराष्ट्र का बम्बई क्षेत्र है। ये क्षेत्र कन्नौजी, बुन्देली, पूर्वी हिन्दी बहुल क्षेत्र है। कानपुर वाजपेयी जी की कर्मभूमि और स्थायी निवास की भूमि है अतः इस नगर के कलक्टर गंज से फूलबाग- मूलगंज से आर्यनगर, जी टी रोड; तथा इटावा औरैय्या, भर्थना, पोखरायां, दिवियापुर जालौन, कुटौध, बीघापुर आदि नगर और देहात तथा महानगरी बम्बई उनके उपन्यासों के कार्य कलाप और सांस्कृतिक जीवन को प्रतिबिम्बित करें तो कोई आश्चर्य नहीं। इन्हीं क्षेत्रों की भाषा के प्रयोग ने उपन्यासिकता के सौन्दर्य को स्वरूप दिया है। निपट- सुर्झलेगें, कारस्तानी (विश्वास का बल- पृ. ८५) सकसैटा सा खड़ा है (सपना विक गया - पृ. ३५) भाषा के उदाहरणों की बानगी है। टूटते बन्धन (पृ.११) में प्रयुक्त वाक्य बुन्देली भाषा का स्वरुप सामने आता है- तुम तो ऐसे बखत सोच के आउत हो कि वे लौट नहीं पाउत।' क्योंकि भाषा संस्कृति की संवाहिका है अतः संस्कृति के विम्बो को भी वही दर्पण की भांति प्रतिविम्बत करती रहती है। 'सपना बिक गया' उपन्यास में भाषा का अनमोल मिश्रण- बुन्देली और मैनपुरी - इटावा की भाषा - सांस्कृतिक व्याघात तो करता ही है कथावस्तु के आस्वादन में भी व्याघात करता है। 'मारे जाते' बुन्देली है पर उसके स्थान पर प्रयुक्त :मज्जाते' इटावा की भाषा का ही हो सकता है।[१] वरातियों द्वारा ब्याह आदि अवसरों पर लक्स से कपड़े धोना और तरह- तरह की मांग को बढ़ावा देना और कन्या पक्ष को पशोपेश में डालना भी समाज का विम्ब है।[२] विवाह के नेग और अवसरों पर स्त्रियों को मायके के नाम से बुलाये जाने की प्रथा तो आज एक समाज में प्रचलित है। इससे उपन्यास में स्वाभाविकता आ गई है। 'लखुनावाली' ऐसा ही प्रयोग हैं।

१. सपना विक गया पृ० १८०
२ दुख लागे नैन प. १८३-८६

मखाने - छुआरे पैसों की विदा के समय वर्षा करना,[१] हाथे लगाना परिछन करना,[२] वैवाहिक रीति रिवाजों का निर्वाह है। मुंह दिखाई में दिए जाने वाले गहने- रुपये[३], सुहागरात के दिन एक कमरे विशेष को सजाना और मात्र दो तकियो से दृश्यांकन करना[४] वाजपेयी जी की अँचलो में गहरी बैठ के स्वरुपों को प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता का प्रतीक है। बहू का ससुराल या मायके जाने पर पैरों को धोया जाना, पुत्र होने पर नाना प्रकार के नेग दस्तूरों का निर्वाह, मान्य का पैसा न लेना, जनेऊ के हाथ में लेकर ब्राह्मणों की शपथ लेना या कि कच्ची के दिन उन्हें छुआरा किशमिश देना प्रथायें ही तो है जो उपन्यास के कलेवर को सांस्कृतिक स्वरुप प्रदान करती है।

वाजपेयी जी का युगीन - समाज आस्थावादी समाज था। आज भी वे आस्थायें - मर्यादायें टूटी नहीं हैं। इसी आस्था पर एक कथन कितना सटीक है- आस्थाओं के नष्ट हो जाने पर हमारा जो रुप बनेगा उसमें और पशु में क्या अन्तर रह जायगा।[५] यहां तक कि उपन्यासों के सामान्य पात्र भी कामता बाबू(सूनीराह) बिहारी (विश्वास का बल) आदि भी दुर्गा सप्तशती, गीता, हनुमान चालीसा आदि का पाठ करते हुए दिखाये गये है। दही - मछली का नामोल्लेख करना (विश्वास का बल पृ. ५४) भी प्रचलित आस्थाओं का प्रतीक है 'सपना बिक गया' उपन्यास में गांवों में चल रही पीढ़ी दर पीढ़ी की शत्रुता पुलिस को घूस लेकर रिपोर्ट न लिखना, लाठी चलना, विधवा पर बलात्कार कुछ ऐसी घटनायें है जो हो रही थी और आज भी हो रही है।

बम्बई से वाजपेयी जी स्वयं सिने- संस्कृति से जुड़े रहे है, उसका परित्याग कर वे वापिस चले आए थे, इस सिने संस्कृति पर उनके विचार आज भी प्रासंगिक है-

> **"यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लोग कला और संस्कृति का नाम ले लेकर आसक्ति और असंयम में पड़कर ही सारी प्रतिभा नष्ट कर डालते हैं। जिस फिल्म उद्योग को तरुण समाज का निर्माण करना चाहिए, वह एक ऐसे समाज का निर्माण कर रहा है जिसे हम एक शब्द में चरित्रहीन कह सकते है।'**[६]

किन्तु वाजपेयी जी में एक आध वृत्ति ऐसी भी है जो परस्पर विरोधी प्रतीत होने लगती है। उनके पात्र परिवेश चित्रण के लिए अंग्रेजी बोलते है तो हम वातावरण निर्माण की बात कहते है किन्तु, यही बात उपन्यास में आलोचना का भी काम करता है- शायद राष्ट्रभाषा के अपमान के कारण की वृत्ति हो-

१. सपना विक गया पृ. १४२
२. दूखन लागे नैन पृ. २०४
३. एक प्रश्न पृ. २०
४. वही पृ. २६
५. सूनीराह पृ. १८०

"रोमनलिपि के 'वैलकम' के अक्षर बने हुए थे, जिनसे प्रतीत होता है कि इनके औद्योगिक निर्माताओं की मानसिक गुलामी अब तक नहीं गई।"७

वाजपेयी जी का राष्ट्रभाव भी अनूठा और अभिव्यक्त है। यद्यपि राष्ट्रीय भाव उनके उपन्यासों की मुख्य वस्तु का संयोजन नहीं करते तथापि प्रसंगवश जो भी अभिव्यक्त है वह उनकी अपनी निष्ठा के कारण ही अभिव्यक्त है। 'एक प्रश्न' है जिसमें यह राष्ट्र भाव प्रश्न बन कर उभरा है जो राष्ट्र एवं समाज के भ्रष्ट आचरण को स्पष्टतः उजागर करता है:-

"जो लोग समाज में फैले हुए भ्रष्टाचार, बेइमानी, धूर्तता और जुल्म को आंख मूंद कर देखते और सहते जाते है, मैं उन्हें कायर और नपुसंक समझता हूं।"१

कोई गांधीवादी विचारक ही यह कहने का साहस कर सकता है।

'जनता की शक्ति आज उस दल के हाथ बिक गई है जो सत्ताधारी है जिसका दृष्टिकोण केवल सत्ता पर आरुढ़ रहना है।'२

समाज में पीढियों का संघर्ष - पिता - पुत्र का भी - सैद्धान्तिक और व्यवसारिक, 'दूखन लागे नैन' 'सूनीराह', 'अधिकार का प्रश्न' 'एक प्रश्न' जैसे उपन्यासो में भी वर्णित है।

एक विकासवादी लेखक प्रगति के उस पथ पर चल सका है जहां अन्तर्जातीय विवाह, जो आज की नियति बने हुए है, लेखक की दिव्य दृष्टि में भी रहे होंगे, को स्वीकृति प्रदान की गई है लेकिन मर्यादा का यहां भी ध्यान रखा गया है- शायद यह इस समाज का अभिजात्य ही हो जहां ब्राह्मण प्रभाकर खत्री उर्मिला से विवाह कर लेता है। ब्राह्मण खत्रियों में परस्पर विवाह विहित है।[३]

यह सांस्कृतिक परिवेश वाजपेयी जी के द्वारा उनके अपने समाज में और देश में होने वाले प्रगति संस्कारों के चलते स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह आज तो और भी जोर- शोर से चाहे व्यक्तिगत कारणों से हो याकि चारित्रिक कारणों से और अधिक प्रचलित हो गया है क्योंकि इसमें भी उपभोक्तावादी आर्थिक विचार संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

१- एक प्रश्न - १६७- ६८,

२- वही - ११०

अध्याय पांच

प्रमुख समकालीन उपन्यासकार
और भगवती प्रसाद वाजपेयी

प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद,
इलाचन्द्र जोशी और भगवती चरण वर्मा

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपना साहित्य सृजन उस युग में प्रारम्भ किया था जब मुंशी प्रेमचन्द, जयशंकर 'प्रसाद' इलाचन्द जोशी, निराला, भगवती चरण वर्मा आदि उपन्यास कहानीकार साहित्य में लगभग स्थापित हो चुके थे। यह भी एक सत्य है कि ये सभी कथा- शिल्पी कहानी और उपन्यास लेखन के ऐसे हस्ताक्षर थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि न केवल उपन्यास और कहानी लिखकर की अपितु निराला ने कविता और प्रसाद जी ने नाटक के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए है जिनसे उनका कथा- साहित्यकार दब सा गया है। निराला जी ने दो एक उपन्यास लिखे, प्रसाद जी ने पाँच कहानी संग्रह - प्रतिध्वनि, छाया, आकाशदीप, आँधी और इन्द्रजाल, और ढाई उपन्यास कंकाल तितली और इरावती (अपूर्ण) - साहित्य जगत को दिए हैं। इलाचन्द्र जोशी और भगवतीचरण वर्मा मूलतः उपन्यासकार है। भगवती प्रसाद वाजपेयी इन्ही महत् उपन्यासकारों और साहित्य सर्जकों के अनुवर्ती साहित्यकार है। उन्होंने अपनी साहित्य सर्जना कवि रूप में की और 'ओस की बूँद' कविता संग्रह में १९ कवितायें प्रकाशित की है जिनमें से कुछ पर छायावादी कवियों विशेषकर निराला जी की कविताओं का प्रभाव लक्षित होता है। नाटक वाजपेयी जी ने दो ही लिखे है वह भी ऐतिहासिक (राय पिथोरा) और छलना (सामाजिक)। सम्भवतः नाटक की टैकनीक वाजपेयी जी को रास नही आई क्योंकि जो वह कहना चाहते हैं विशेषरूप से समाज की कुत्सा का चित्रण, उसके लिए केवल उपन्यास ही एक फलक था जिसपर वे वह सब उतार सकते थे जो नाटक की सीमाओं में वे नहीं कह पा रहे थे। उपन्यास में लेखक के लिए पर्याप्त स्थान होता है कि वह स्वतंत्र रुप से भी अपना मन्तव्य प्रकट कर सके।

वाजपेयी जी और प्रेमचन्द : भगवती प्रसाद वाजपेयी और प्रेमचन्द के बीच कुछ ऐसी समानतायें है जो दोनों को एक जैसे अनुभवों में रख कर कहानी- उपन्यास लेखन की ओर प्रेरित कर सकी।

वाजपेयी जी और प्रेमचन्द जी दोनों ने ही सामाजिक निर्धनता और अध्यवसाय से स्वावलम्बी बनने का अदम्य साहस के साथ उन सब बुराइयों का सामना किया जो पारिवारिक भी थी,

सामाजिक भी थी और जातिगत अभिजात्य की हिमायती भी। आर्थिक दुरावस्था इनमें सर्वोपरि थी। लोक संवेदनाओं ने मुंशी प्रेमचन्द के सामाजिक चित्र फलक को इतना विस्तार दिया कि इनकी तीन सौ से भी अधिक कहानियां 'मानसरोवर' शीर्षक से आठ भागों में प्रकाशित हुई है। सामाजिक विकृतियों का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसे उन्होंने अपनी कहानियों में न लिखा हो। कहानियों के मार्ग से वे उपन्यास क्षेत्र में आए और अधिक प्रभावशाली ढ़ंग से उपन्यासकार बन गए।

वाजपेयी जी के साहित्य सृजन में कहानियां १९१७ से लिखी जा रही थी और तीन सौ कहानियों का १६ संग्रह प्रकाशित कर वे सन्तुष्ट न हो सके। १९२६ में उन्होंने पहला उपन्यास 'प्रेमपथ' प्रकाशित किया जिसकी भूमिका भी मुंशी प्रेमचन्द ने ही लिखी। मुंशी प्रेमचन्द मर्यादा सम्पादक थे। वाजपेयी जी की 'अनधिकार चेष्टा' शीर्षक कहानी मर्यादा में प्रकाशित हुई। वाजपेयी जी ने उनसे पारिश्रमिक की मांग की तो उन्हें यह उतर मिला' यह आपकी अनधिकार - चेष्टा है, फिर भी पांच रुपये भेजे जा रहे हैं।' [१]

एक विचित्र संयोग साम्य है इन उपन्यासकारों में।

(१) दोनों उपन्यासकार आर्थिक दुरावस्था में होते हुए भी स्वावलम्बी और कलम के धनी होकर ही जीना चाहते थे।

(२) दोनों ने ही सब डिप्टी इन्सपैक्टर ऑफ स्कूल्स पद से इस्तीफा दिया।

(३) दोनों साहित्यकार कानुपर नगर के जन - जीवन में रहकर सर्वहारा और सवग्रासी की विषमताओं से प्रभावित थे। कानपुर नगर वैसे भी साहित्यकारों की जन्म स्थली रही है।

(४) दोनों ही लेखक कहानी से उपन्यास क्षेत्र में आए और लगभग तीन सौ कहानियों के रचनाकार रहे है।

अन्तर केवल इतना है कि प्रेमचन्द जी का कथा- फलक बहुत व्यापक है, वाजपेयी जी का किंचित सीमित।

एक और अन्तर है दोनों के चिन्तन में। प्रेमचन्द जी ने व्यापक मानव समाज को दृष्टि में रखकर कहानी- उपन्यास लिखे है। जो सामाजिक वैषम्य, सर्वहारा, सर्वग्रासी, आर्थिक दुरावस्था और ग्राम्य - नागरीय जीवन से सम्पृक्त है अतः वे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक व्याप्त है। जबकि वाजपेयी जी की उपन्यास साहित्य प्रेम- वासना - कर्तव्य की गहराईयों तक जाकर मानव - मन की द्विधा और द्वन्द्व को चित्रित कर सका है। वाजपेयी जी ने प्रेमचन्द के आशीर्वाद से अपने उपन्यासो

१. क्षेमचन्द्र सुमन : वाजपेयी जी: जीवन के विविध सन्दर्भ

का भी उद्देश्य आदर्शोन्मुक रखा है यद्यपि उनका चित्रण यथार्थवादी ही था। व्यक्ति, परिवार और समाज के परिप्रेक्ष्य में वाजपेयी का त्रिकोणीय विषयों पर मनोवैज्ञानिक चिन्तन अर्थवान रहा है। यद्यपि वाजपेयी जी के उपन्यासों की संख्या प्रेमचन्द के उपन्यासों से कहीं अधिक है किन्तु प्रेमचन्द के एक दर्जन उपन्यास जो दे सके वह दृष्टि वाजपेयी जी में कभी रही ही नहीं।[१]

वाजपेयी जी और जयशंकर प्रसाद : प्रसाद जी मूलतः कवि है और उनकी कविता में छायावादी रोमांटिसिजिम व्याप्त है। वाजपेयी जी मूलतः कवि ह्रदय है। उनकी समस्त साहित्य सर्जना में इस रोमांटिसिजिम के दर्शन होते है। उनकी गीतात्मका निराला और पंत के अधिक निकट है किन्तु, उनके गद्य गीत और मुक्त- छंद कविता प्रसाद जी से अनुप्रणित है। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में प्रसाद जी की उस गूढ़ दृष्टि का प्रभाव वाजपेयी जी पर पड़ा है जिसमें मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव पात्रों के चरित्र निर्माण को प्रभावितों करता ही है कथा भाग को भी मनोवैज्ञानिक स्थितियों में निर्माण की ओर ले जाता है। आत्मघाती के मन में निजीविषा, बलात्कारी के मन का परिष्कार, प्रेम की वासना- तृषा का अन्ततः सात्विकता में परिवर्तित होना कथानक को सुखान्त बनाता ही है। पात्रों का भी उन्नयन करता है और उपन्यास फिर आदर्शोन्मुख हो जाता है। प्रसाद जी के अपने पांच कथा संग्रहों में लगभग एक सौ पचास कहानियां और दो पूर्ण उपन्यास तथा एक अपूर्ण उपन्यास मानव मन की वृत्तियों आशा आकांक्षाओं की पूर्ति मानव मनोदशा के उद्‌घाटन से करते है। कंकाल उपन्यास में धर्मान्धिता, जमींदारी शक्ति का प्रभुत्व, साधू संतो, मेलों का हरद्वार में सम्मेलन आदि सामाजिक जीवन- यापन के बद्ध मूल संस्कारों को चित्रित कर उनको व्यापक चित्र- फलक पर प्रतिष्ठित किया है किन्तु वाजपेयी जी ने उपन्यासों के पात्रों को यथार्थ में जिया है। उनका जीवन स्वयं यथार्थ की प्रयोगशाला रहा है। प्रसाद जी ने दो उपन्यास तो सामाजिक धरातल पर दिये जिनमें से कंकाल में अनेक सामाजिक अवगुणों, अभिजात्य का ढौग और धर्मान्धिता का छलावा था; तितली' में ग्राम्य और नागरीय जीवन के सामञ्जस्य का चित्रण किया गया है। जो सेवा व्रत मुंशी प्रेमचन्द ने सेवा सदन में उठाया था उसे नए परिवेश में लोक सम्मत जयशंकर प्रसाद ने बनाया। वाजपेयी जी ने भी इसी सेवा व्रत को आगे बढाया। तीसरा उपन्यास बौद्ध श्रमण और अवन्ति के राज प्रसाद का ऐतिहासिक स्वरूप लिए सांस्कृतिक उपन्यास बन जाता किन्तु वह 'प्रसाद' जी के जीवन काल में पूरा न हो सका। किन्तु, भिक्षुणियों के प्रवेश से बौद्ध धर्म का पायमय होना उन्हें स्वीकार नहीं था। उनकी मर्म भेदिनी दृष्टि तो पैर देखकर नारी चरित्र की व्याख्या - कुलटा और गर्भिणी - कर सकने में समर्थ

१- परिशिष्ट - १

थी । (कुलटा और गर्भिणी विषयक प्रसंग स्वयं वाजपेयी ने अपने संस्मरण में लिखा है ।) संक्षेप में नारी विषयक मनोविज्ञान प्रसाद जी की देन प्रतीत होती है ।

भगवती प्रसाद वाजपेयी और इलाचन्द्र जोशी : इलाचन्द्र जोशी अपने उपन्यास 'पर्दे की रानी' सन्यासी' और 'जहाज का पंछी' से साहित्य जगत में समाहत्त हुए। 'पर्दे की रानी' शुद्ध नारी चरित्र का आख्यान है जिसे कई अध्यायों में मात्र दो नारियों की कहानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । 'शीला की कहानी' और 'निरंजना की कहानी' दोनों के दो अलग- अलग धरातल है, विचार है, रहन- सहन है और अलग- अलग एक अपना संसार भी । जहाज का पंछी और भगवती बाबू के 'छोटे साहब' में एक प्रासंगिक और नायक का चारित्रिक साम्य है ।

इलाचंद्र जोशी ने भगवती प्रसाद वाजपेयी की मानवीय संवेदनाओं का कथाकार कहा है और समीक्षा के लिए उनकी कहानियों पर टिप्पणी करते हुए यह अभिमत व्यक्त किया है कि उन पर फ्रांसीसी कहानीकार "मोपांसा की शैली की सुस्पष्ट छाप" है । मोपासां सरल सुबोध और सुगम्य भाषा में पाठकों को कहानी में आकर्षित कर मुग्ध कर देता है ठीक वैसे ही"वाजपेयी जी की कहानियों में भी हम शब्दों का उपयोग तथा घटनाओं और परिस्थितियों के वर्णनों के सम्बन्ध में वही संयम पाते है ।"[१]

नारी मन की ग्रन्थियों को जोशी जी ने अपने सभी उपन्यासों में प्रायः सुलझाने का प्रयास किया है । सभी की सहृदयता नायक को प्राप्त रहने के बाद भी उसे बांध नहीं पाती (जहाज का पंछी) उसी प्रकार वाजपेयी जी शुद्ध प्रेम के महत्व को नजर अन्दाज नहीं कर पाते । अर्थात वाजपेयी जी के कथा साहित्य में लक्ष्य उद्देश्यपूर्ण और सार्थक होता है उसकी उपलब्धि ही उनके उपन्यास की सफलता है ।

१. इलाचन्द्र जोशी: मानवीय संवेदनाओं के कथाकार भ. प्र. वाजपेयी

भगवती चरण वर्मा भारतीय समाज के नारी मनोविज्ञान के ऐसे उपन्यासकार है जिन्होंने 'चित्रलेखा' उपन्यास में प्रेम और वासना' के अन्तर को स्पष्ट किया है और यही 'प्रेम और वासना' भगवती प्रसाद वाजपेयी के लगभग सभी उपन्यासों का विषय रहा है। योगी कुमार गिरि के लिए चित्रलेखा के ये शब्द आज भी उपन्यास जिज्ञासुओं के कान में गूंजते रहते है- "वासना के कीड़े ! तुम प्रेम करना क्या जानो ?" प्रेमी तो वीजगुप्त है जिसमें अपने प्रेम की पवित्रता के लिए अपना सब कुछ श्वेतांक के लिए त्याग दिया था। 'वह फिर नहीं आई 'प्रश्न और मरीचिका' और 'भूलेविसरे चित्र' उपन्यासों में नारी का चरित्र ही तो चित्रितं है। ये वही चंचल, यौन कुण्ठा ग्रस्त, महत्वाकांक्षी नारियां है जो किसी नगर के एक कोने में नहीं, नगर में भी नहीं अपितु देश की राजनीति में भागीदार बनना चाहती है।, जो धन के लिए अपना तन (वेश्यावृत्ति से नही) बेचती है। आभूषणों से जिन्हें प्रेम हैं, वे शराब पीते पीते होश खो बैठती है किन्तु भेंट में मिली कार का चढ़ना नहीं छोड़ पाती। वाजपेयी जी की नारी की परिधि सीमित है। वे छोटी - छोटी घटनाओं में संवेदनशील होकर अपनी भावाभिव्यक्ति करती है। उनमें भी विवाह पूर्व गर्भधारण कर त्यागे जाने का क्षोभ है परन्तु उनमें अपार सहनशक्ति भी है।

भगवती चरण वर्मा का क्षेत्र और क्षितिज व्यापक है। उपन्यास में पात्रों की भीड़ लग सकती है किन्तु वे अपने - अपने दायरे में स्पष्ट भी हैं। पुरुष पात्रों में नायक के चरित्र आदर्श वादी है इसमें सन्देह नहीं। वर्मा जी का विषय प्रसार परिवार मात्र नहीं है, भगवती प्रसाद वाजपेयी का क्षेत्र परिसीमित है। वर्मा जी के पात्र शासकीय अफसरों के ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित होने पर भी राजनीति के दाँव पेचों से भरे है। समाज के व्यवसायी जन अलंकारों और मोटरकार तथा हजारों रुपये का उपहार और नकद अफसरों अथवा राजनेताओं की पत्नियों को देकर अपना काम बनाना जानते है। यह आज की भी प्रासंगिकता है। किन्तु भगवती प्रसाद वाजपेयी ने इस सीमा तक जाने का साहस नहीं किया। उनका भोगा हुआ सत्य और आदर्शवादी मन इन छल छद्मों में नहीं उलझ सका।

निष्कर्षत : हम यह कह सकते है कि नारी मन के उद्वेलन, उत्थान - पतन, भावनात्मक हर्ष - विषाद हम वाजपेयी जी के ही उपन्यासों में पाते है। वर्मा जी के उपन्यासों में घटना बहुलता है, प्रसार और क्षेत्र की विशालता है तथा देश की आज की भी आर्थिक विषमताओं का चित्रण है। दोनों ही लेखक अन्ततः है नारी- मन के ही विश्लेषक।

षष्ट अध्याय

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों का प्रदेय - प्रगतिवादी स्वर

भगवती प्रसाद वाजपेयी मूलतः उच्च मध्यमवर्गीय और मध्यम वर्गीय समाज के कथाकार है। इसी वर्ग की वैयक्तिक पारिवारिक और समाजगत प्रेम अैर कर्तव्य के द्वन्द्व की समस्या को विभिन्न परिवेशों में आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक सन्दर्भों में उत्कीर्ण करने का श्रेय वाजपेयी जी को ही है। इन सम्पूर्ण कथावृत्तों में वाजपेयी जी ने स्वयं भोगे अथवा अनुभावित यथार्थ का चित्रण किया है जो आज भी हमें अपने परम्परावादी रुढ़िग्रस्त समाज में देखने को मिलता है किन्तु, इसके पीछे समाज के सुन्दर भविष्य की आदर्श कल्पना के अनगिनत सुझाव भी है जिनसे तरुण और युवा वर्ग की आशा आकांक्षाएँ भी फलीभूत होती रहेगी। प्रेमचन्द द्वारा दर्शाये यथार्थ से आदर्श के लक्ष्य प्राप्त करने जैसे उद्देश्य की प्राप्ति करना ही लेखक का एक मात्र उद्देश्य है। इसमें तत्कालीन गांधीवादी दर्शन और विचार भी मिल गए है क्योंकि अन्ततोकगत्वा वही सत्य है। वाजपेयी जी ने इसी सत्य ज्ञान की महत्ता सिद्धि के लिए उपभोगवादी विचार धारा को समयोजित कर नए नैतिक मूल्यों की स्थापना की है। प्रत्येक उपन्यास में ये नैतिक मानदण्ड न तो बुजुर्ग पात्रों द्वारा आदेशित है और न ही लेखक द्वारा आरोपिता ये उन्नति गामी विचार उन तरुण पात्रों से उद्‌भुत हुए है जो मानव मूल्यों की स्थापना के लिए सतत संघर्ष करते रहे हैं।

भगवती प्रसाद पर व्यक्तिवादी चिंतक होने का प्रायः आरोप लगाया जाता है । वस्तुतः वाजपेयी जी इस व्यक्तिपरक (नायक परक) आक्षेप को समाज की प्रतिनिधि इकाई के रुप में स्वीकार करते है। संघर्ष की स्वायत्तता तो व्यक्ति को ही निर्वाह करना पड़ती हैं। फिर वाजपेयी जी का समाज राष्ट्रीय था कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज नहीं है- हाँ, मानवीय अवश्य है जिसका उद्‌घोष और परिपालन व्यक्ति ही करता है। इसमें गांधी- विचारधारा और रवीन्द्र नाथ टैगोर की एकात्मकता का प्रभाव मुख्य है। यदि इन सभी आयामों को एक साथ मिलाकर देखा जाये तो हमें कहना पड़ेगा कि वाजपेयी जी तरुण भावना के चितेरे है। प्राचीन परम्परा या मान्यतायें उस सीमा तक उन्हें स्वीकार्य है जब तक वे समाज में सुख - शान्ति की विधायक है। किन्तु, शिक्षा के विकास आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बन की योजना, नर- नारी का नैसर्गिक प्रेम- आकर्षण, देश के विकास में स्वदेशी का प्रयोग, सब मिलाकर उन्हें उस रुढ़िवादी समाज से विद्रोह करने पर विवश करते है। जहाँ वैधव्य का जीवन नारीत्व को

कलंकित करता है अथवा नारी अपनी काम- कुण्ठा में अपने जीवन- वोध को भूलने पर विवश होती है। परम्परावादी वे नहीं है किन्तु समाज में उच्छृखलता के भी हामी नहीं है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों का प्रदेय संक्षेप में हम कह सकते है-

१- परम्परावादी समाज को आशावादी और उन्नतिशील बनाना उनका लक्ष्य था। आर्थिक स्वावलम्बन के लिए वे प्रगतिवादी व्यक्तित्व थे। जिस युग में मुंशी प्रेमचन्द ने प्रगतिशील जनवादी लेखक संघ की स्थापना की उसी युग में वाजपेयी जी प्रतिवर्ष एक औपन्यासिक कृति साहित्य को देते रहे जिसमें तरुण नर- नारियों का साहस सामाजिक संघर्ष एवं विकास का कारण बनता रहा।

२- वाजपेयी जी स्वयं सिने- जगत में रहे। वहां की जीवन चर्या और अर्थोत्पादकता के साध्य को एन केन प्राकारेण प्राप्त करना उन्हें मानवीय न लगा होगा। उनका स्वयं का अनुभव था कुछ गीत, कुछ घटनाक्रम, कुछ मारपीट और कुछ अंग प्रदर्शन जो वास्तविक संसार में नहीं है और न ही हो सकते है- यह सब उनकी मन- आत्मा- चेतना को स्वीकार नहीं था- अर्थ बहुत मिल सकता है पर किस सांस्कृतिक मूल्यों के विनाश पर जिस पर हमारा समाज युग युगों से विकास कर रहा है।

३- सामाजिक प्रगति में ऐसे रीति रिवाज जिनसे द्वार पर आई बारात लौट जाये, दहेज की मांग एक अनिवार्यता बने, नेग और सीमाहीन अमर्यादित हंसी- मजाक उन्हें स्वीकार नहीं थे क्योंकि वे समाज को पीछे धकेलते है। 'अनाथ पत्नी' में कान्यकुब्ज ब्राह्मण) उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं रहे।

४- नारी उत्थान के लिए उनमें शिक्षा और शालीन मर्यादाओं की आवश्यकता पर उनका बल है।

५- नारी मन की छोटी - छोटी ग्रन्थियों और कुण्ठाओं को मिटाकर वे प्रगतिशील नारी की ऐसी कल्पना करते थे जो समाज में सिर उठाकर स्वावलम्बी बनकर पुरुष की वास्तविक अर्धागिनी बन सके। मात्र शंका और सन्देह का पात्र न बने।

६- सबसे उत्तम कार्य वाजपेयी जी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन है जिस पर प्रतिष्ठित पात्र भी अपने सांस्कारिक विवेक से कर्त्तव्य पर लालसाओं को तिरोहित कर देते हैं जिसकी हमें अपेक्षा नहीं होती किन्तु वही घटित करा कर उपन्यास में पात्र के चरित्र की उदात्तता को दृढ़ करना, उनका अपना कला-कौशल है।

उपर्युक्त दृष्टि से वाजपेयी जी एक प्रगतिवादी लेखक है जो अपने समकालीन उपन्यासकार अमृतलाल नागर, विश्वम्मर नाथ शर्मा कौशिक, भगवती चरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, जैनेन्द्र आदि के साथ की पंक्ति में बैठकर भी सबसे अलग दृष्टि गोचर होते है। प्रेमचन्द्र का प्रसाद और आर्शीवाद उन्हें प्राप्त था। प्रभाकर माचवे, आचार्य चतुरसेन, 'हरिऔध' वृन्दावन लाल वर्मा, निराला जैसे अनेक साहित्यकारों ने उन्हें सराहा है और आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें 'डायरी लिखते रहने'[१] का बहुमूल्य सुझाव भी दिया है। कुछ मिलाकर वाजपेयी जी एक संवेदनशील श्रेष्ठ उपन्यासकार थे।

सिंहावलोकन : सम्मतियाँ और परिशिष्ठ

सम्मतियां :

श्री अटलबिहारी वाजपेयी : *(अब प्रधानमंत्री , भारत सरकार, नई दिल्ली ।)*

भारत के कथा- साहित्य में पं. भगवती प्रसाद वाजपेयी का एक विशेष स्थान हैं । शरत् और प्रेमचन्द की भांति उनके पात्र भारतीय मृत्तिका से सम्भूत होते है, उनका चरित्र - चित्रण यथार्थवादी किन्तु आदर्शोन्मुख होता है और उनकी भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण होने के नाते सीधी हृदय को छू लेती है । मुझे वाजपेयी जी के उपन्यास तथा कहानी संग्रहों को पढ़ने का सौभाग्य मिला है । जीवन की विविधता पूर्ण झांकी प्रस्तुत करते हुए भी वे उसे सजाने और संवारने की दृष्टि लेकर ही चलते हैं । सत्य के साथ सुन्दर और शिव की उनकी साधना अनूठी है ।

श्री रमानाथ अवस्थी : *(विविध भारती, आकाशवाणी, नयी दिल्ली ।)*

"जिन सत्यों के लिए
तुमने मुझे प्रेरित किया,
अपनी सामर्थ्य और सीमा में -
मै उन्हीं के लिये जिया !
तुम तक में पहुँचा या नही ?
तुमसे मै दूर हूँ या पास ?
यही मेरा प्रश्न, यही मेरा प्रणाम ।

श्री कल्याणमल लोढ़ा : *(कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानद प्रोफेसर ।)*

"श्रद्धेय वाजपेयी जी पिछली पीढ़ी के यशस्वी साहित्यकार है, जिनका आज भी प्रभाव और महत्व यथावत् बना हुआ है । उनकी कहानियों और उपन्यासों

में जहां जीवन का उदात्त पक्ष मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित होता है, वहां उनका लोकोदयी स्वरूप भी। 'उसने कहा था' की भाँति 'मिठाई वाला' भी हिन्दी कहानी के विकास का एक विशिष्ठ मार्ग चित्र है। परिष्करण वृत्ति के द्वारा साहित्यकार अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से जीवन का स्वस्थ और सुष्ठरुप प्रस्तुत करता है। वाजपेयी जी भी स्वस्थ मनुष्य के स्वस्थ जीवन के स्वस्थ साहित्यकार है।"

श्री बालकृष्ण बलदुआ : *(कला शिल्पी, कानपुर)*

"वाजपेयी जी हिन्दी साहित्य में प्रेम की उद्दाम वासनाओं और आवेगों के सिद्धहस्त, रसमर्मज्ञ चतुर चितेरे की भांति विख्यात है। जीवन में उनकी दृष्टि दार्शनिक, शिशुवत सहज, सरल भावना- समर्पित रही है। संघर्ष के कड़े से कड़े झौकों को उन्होंने इसी दृष्टि से विजित और सौम्य बनाया है। यह उपलब्धि उनकी साहित्यिक उपलब्धि की प्रेरिका और सहायिका दोनों ही रूपों में महत्वपूर्ण और अभिनन्दनीय है।"

पात्र के रूप में लेखक भगवती प्रसाद वाजपेयी

"आज मेरे पास धन है। थोड़ा बहुत नही अथाह धन, वह धन, जिसके अभाव ने मेरे जीवन की हरी भरी अमराई में आग लगा दी थी।

"यही कि क्या मानव- जीवन भी सागर की भाँति सीमाहीन बन सकता है। अगर नहीं तो हमारे छोटे- से मन में इतनी विशाल तरंगे क्यों उठती है?"

'छोटे साहब' उपन्यास से
१९६६

पं. जवाहरलाल नेहरु सदा अपनी मेज पर राबर्टफ्रॉस्ट की ये काव्य पंक्तियाँ रखे रहते थे -

The forest are dense, dark & green.
But I have the promises to keep.
And miles to go before I sleep
And miles to go before I sleep.

भगवती प्रसाद वाजपेयी का स्वर था -

सघन मनोहर कानन तम मय

किन्तु वचन है मुझे निभाना

और अभी सोने से पहिले

बहुत दूर है मुझको जाना ।

पत्र पत्रिकायें

मर्यादा

संसार

सम्मेलन पत्रिका

रसिक मित्र

लक्ष्मी

परिवर्तन

श्री शारदा

कर्मवीर

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी

लघु प्रबन्ध ;- भगवती प्रसाद वाजपेयी का 'राजपथ'

ग्रंथ :- भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यास - प्रेमपथ, पतिता की साधना, पिपासा, निमंत्रण गुप्तधन, विश्वास का बल, सूनीराह, उनसे न कहना, दूखन लागे नैन, अधिकार का प्रश्न, राजपथ, छोटे साहब ।

स्काट जेम्स : दि मेकिग आफ लिटरेचर

वर्सफोल्ड : जजमेन्ट इन लिटरेचर

रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

श्री नारायण अग्निहोत्री : उपन्यास कला के तत्व

राल्फ फॉक्स : दि नावेल एण्ड दी पीपुल

इलाचन्द्र जोशी : पर्दे की रानी, सन्यासी, जहाज का पंछी

प्रेमचन्द : मानसरोवर ८ भाग, गोदान, कर्मभूमि

भगवती चरण वर्मा : चित्रलेखा, वह फिर नहीं आई, प्रश्न और मरीचिका भूले विसरे चित्र

डॉ. जे. एल. कंचन : भगवती चरण वर्मा के नारी पात्र

भगवती प्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रंथ - सं. डा. ललित शुक्ल

कर्तव्य और वासना का द्वन्द्व : प्रेमपथ

मुंशी प्रेमचन्द

समाज का आधार मनुष्यकृत बंधनों ही पर है। उन बंधनों को हटा दीजिये और समाज का अस्तित्व मिट जाता है। विवाह भी तो एक कृत्रिम बंधन ही है। बेटा बाप की जायदाद का वारिस होता है, यह भी तो एक कृत्रिम बंधन ही है। इनमें कुछ बंधन तो ऐसे हैं, जिनकी पहले चाहे जितनी जरुरत रही अब बिलकुल नहीं रही। उनका टूट जाना ही अच्छा है। लेकिन कुछ बंधन ऐसे हैं, जो समाज के स्तम्भ हैं, उनका टूट जाना कदापि वांछनीय नहीं।

स्त्री और पुरुष में प्रेम हो जाना स्वाभाविक क्रिया है, लेकिन जिस प्रेम का अंत विवाह नहीं, केवल वासना हो, वह कलुषित है, उसकी निंदा होती है और होनी चाहिये; अन्यथा विवाह की मर्यादा भंग हो जाएगी। तारा और रमेश का प्रेम कलुषित है, लेकिन आश्चर्य है कि वह इतने दिनों तक उसे निर्मल और निष्कलंक समझती रही। अगर विधवा साली का अपने जवान बहनोई के साथ एकांत में रात- रात भर बात करना, चुम्बन और आलिंगन करने से भी न हिचकना, पवित्र प्रेम है, तो फिर संसार में अपवित्र प्रेम कहीं है ही नहीं। पवित्र प्रेम यह रुप नहीं धारण करता, यह तो वासना का ही रुप है। तारा अपने को बहुत दिनों तक धोखा देने के बाद अंत में रमेश की कुचेष्टा देखकर एक दिन उसका तिरस्कार करती है, और रमेश लज्जित होकर उसके पैरों पर गिर पड़ता है। इसके बाद तारा का एक पत्र रमेश के पास आता है और पुस्तक का अंत हो जाता है। सम्भव है, इस तिरस्कार ने रमेश को सदैव के लिये सचेत कर दिया हो, पर ऐसा अनुमान करने के लिये हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता। जो तारा दो बार क्षमाकर सकती है, क्या वह तीसरी बार न क्षमा करेगी? जिस तारा में लेखक ने विलासिता और चंचलता का प्रचुर मात्रा में होना बताया है, जो एक बार प्रेम की इन शब्दों में व्याख्या करती है - "जहां प्रेम होता है, वहां लाज नहीं रहती और जहां लाज रहती है, वहां प्रेम नहीं होता"- उसका आत्म- दमन करना आशातीत ही है।

लेखक ने बीच- बीच में समाजनीति पर विचार स्वयं प्रकट किये हैं या नायिका के मुंह से निकलवाये हैं, उनसे अगाघ प्रेम का समर्थन होता है। मालूम नहीं, वाजपेयी जी ने क्यों दोनों प्राणियों को विवाह- सूत्र में नहीं बांध दिया- कदाचित् रमेश में इतना साहस नहीं है । जब रमेश ने ज्ञान का उपदेश करके देख लिया कि तारा पर उसका कोई असर नहीं हुआ, जब वह भी मानता है कि ऐसी

परम सुन्दरी रमणी भोग के लिये बनायी गयी है, आत्म- दमन करने के लिये नहीं, तो उसका अपने कर्तव्य से जी चुराना उसकी कायरता ही है।

मगर यह तो मतभेद की बात हुई। भगवतीप्रसाद जी ने हिन्दी- संसार को यह बहुत ही अच्छी बस्तु भेंट की है। इसमें वासना और कर्तव्य का अंतर्द्वन्द्व देखकर आप चकित हो जायेंगे। देखिये, वासना कैसे- कैसे कपट- वेष धारण करती है- कभी दार्शनिक बन जाती है, कभी भक्ति के रुप में नजर आती है, पर है वह वासना। रमेश ने तारा को अपने प्रेम का वास्तविक रुप दिखा दिया है और जब बदनामी होने पर भी तारा को क्रोध या रोष नहीं आया, तो वह उससे पूछता है- 'ऐसी बातें सुनकर तुम्हें क्रोध नहीं आता?'

तारा निस्संकोच होकर कहती है- 'मैं तुमसे पूछती हूँ, कि मैंने वास्तव में अपराध क्या किया है? मेरे ह्रदय को विश्वास है कि मैंने पाप नहीं किया। फिर मुझे रोष किस बात पर पैदा हो?'

यह वासना का दार्शनिक रुप नहीं तो और क्या है। रमेश पुरुष है, इसलिये उसकी वासना तर्क का रुप धारण करती है। वह अपनी स्त्री रमा से कहता है- 'मेरी यह आन्तरिक धारणा रही है कि ऐसे समय पर उसके अन्तःकरण में ऐसी भावनाएँ भरता रहूँगा, जिससे वह अपने जीवन के इस कठोर तप में सफल हो सके। उसके विचारों में कभी कुत्सित भाव न पैदा होने पाये।' तर्क का इससे बढ़कर कुत्सित रुप और क्या हो सकता है?

लेकिन अंत में सद्विचार अपना असर दिखाता है और यह वासना शुद्ध प्रेम के रुप में बदल जाती है। तारा अपने शुद्ध और पवित्र आचरण से रमेश के ह्रदय में श्रद्धा का बीज बो देती है। उसे अन्त में ज्ञान होता है कि तारा उसके साथ सदैव निष्कपट और पवित्र व्यवहार करती रही। लेकिन रमेश उसके मनोभावों को समझ न सका। वह सीन, जिसमें रमेश ने तारा का यथार्थ रूप देखा है, बहुत अच्छा हुआ है। रमेश को कुवासनाओं ने उत्तेजित कर रखा है। वह तारा का दृढालिंगन करके कहता है- 'तारा आज मुझे क्षमा करोगी?'

तारा की नसों की उत्तप्त धारा चंचल हो उठी। उसके दोनों नेत्र जलने लगे। उसकी कलुषित चेष्टा देखकर वह पूछती है- 'बोलो, क्या चाहते हो? व्याह करोगे? क्या करोगे, बोलो ना?'

आगे चलकर तारा कहती है- 'मैंने प्रेम किया था, आत्म- समर्पण किया था, उस प्रेम का यह फल? मैं जानती नहीं थी, प्रेम का यह फल होता है। मैं जानती थी, तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझे प्यार करते हो- सखी भाव से करते हो- निष्काम भाव से करते हो। तुम्हारे ह्रदय में एक क्षण के लिये भी

कुत्सित भावना उत्पन्न हो सकती है, मुझे स्वप्न में भी पता न था। मैंने भूल की, उसी भूल का यह प्रायश्चित है।'

रमेश की आँखें खुल जाती है और वह तारा के चरणों पर गिर पड़ता है।

इस भांति कर्तव्य की वासना पर विजय होती है। ठीक उस वक्त, जब पाठक को मालूम होता है कि अब तारा का पतन हुआ चाहता है, एकाएक ऊजागर उसका विवेक जाता है और वह रमेश को फटकार बताती है, जो भाषा और भाव दोनों ही पहलुओं से इस कथा की जान है।

मगर हम फिर भी कहेंगे कि यदि तारा ने समाज के बन्धनों की अवहेलना न की होती, तो शायद उसे यह तिरस्कार सुनाने की नौबत न आती। अगर वह इतने दिनों तक कलुषित वसना का परिचय न पा सकी- एक बार उसका प्रमाण मिलने पर भी नहीं समझी, तो हम यही कहेंगे कि वह जरुरत से ज्यादा अबोध है, और ऐसी अबोध बालिकाएँ समाज में जितनी कम हो उतना ही अच्छा।

(सन् १९२६ ई०)

आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल से

प्रथम भेंट

इन्दौर में हिन्दी साहित्य - सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन होने वाला था। मित्रों ने कहा- "वाजपेयी जी, इस अवसर से आपको लाभ उठाना चाहिये। कथा- साहित्य सम्बन्धी जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। आपको शुक्लजी के पास सब भेजनी चाहिये।'

मैंने कहा - 'इस समय तो मैं नहीं भेजूँगा, क्योंकि इसका अर्थ यह होगा कि मेरे कृतित्व के सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार स्थिर किये हैं उनकी अपेक्षा मैं उनसे कुछ अधिक की आशा करता हूँ।'

उन्होंने जवाब दिया - 'तब उनसे कुछ भी आशा नहीं करनी चाहिये। युग बदल रहा है। बिना मिले- जुले काम नहीं चलता।'

मैंने कहा - 'न चले; लेकिन मेरा चलता है।'

कुछ दिनों बाद जब आश्चर्य शुक्लजी का साहित्य परिषद के सभापति पद से पढ़ा हुआ भाषण छपकर आया और उसमें साहित्य के तत्कालीन श्रेष्ठ कथाकारों में मेरा नाम यथास्थान प्रकाशित हुआ तो उन्हीं लोगों ने बधाई देते हुए मुझसे कहा- 'भाई तुम्हारा कहना सही निकला।'

इसके बाद-

मैं आचार्य शुक्लजी से मिलने गया तो अन्य वातों के साथ- साथ उन्होंने पूछा- 'आप डायरी रखते हैं कि नही ?'

मैंने कहा - 'कभी - कभी उसका उपयोग कर लेता हूँ; लेकिन नियमित रुप से डायरी मुझसे नहीं लिखी जाती।'

वे बोले - 'तब तो फिर विशेष बातें नोट करने से चूक जाते होंगे अक्सर।'

मैंने उत्तर दिया - 'मेरी डायरी मेरा मन है, मस्तिष्क है, चेतना है, स्मरण शक्ति है। जब अवसर आता है तब सारा विगत मेरे सामने आने लगता है।'

वे बोले - 'मगर यह पद्धति बहुत पुरानी हैं साहित्यकार को एक नोटबुक अवश्य रखनी चाहिये; फिर तुम तो कथाकार हो। एक समय आयेगा जब स्मरण- शक्ति कम हो जायगी- तब तुमको नोटबुक की उपयोगिता का अनुभव होगा।

भगवतीचरण वर्मा के नारी पात्र

डॉ० जवाहरलाल कंचन

भगवती चरण वर्मा प्रेमचन्द युगा के सशक्त उपन्यासकार हैं। उनका पहला उपन्यास 'चित्रलेखा' साहित्य जगत में एक युगान्तरकारी कृति है। वर्मा जी ने अपने समस्त उपन्यासो में उच्च मध्यमवर्गीय समाज के अभिजात्य से होने वाले निरन्तर संघर्ष का चित्रण किया है। इस समाज के नव- अभिजात्य में न केवल सामन्तवादी जमीदार है अपितु शासन में उच्च पदासीन अधिकारीगण, जन- प्रतिनिधि, विधायक, सांसद व मंत्रीगण, पूजीपति, उद्योगपति, सेना के अधिकारी एवं पत्रकार भी है; इन उपन्यासों में जीविका के लिए निरन्तर संघर्षरत सामान्य नर नारी भी हैं जिनकी संवेदनाएँ हमें सदा- सर्वदा प्रभावित करती है, जिनके पारिवारिक - क्लेश आर्थिक और भावनात्मक पीड़ा के द्योतक है। वर्मा जी समाज की समस्याओं का निदान तर्क आधरित प्रयासों में खोजते हैं; विपन्नता की स्थिति में उनके पात्र धैर्य्य और शान्ति भी धारण करते हैं। पुरुष पात्र - बहुल उपन्यासों में नारी- पात्रों की सहज संवेदन शीलता पाठक को प्रभावित करने में सक्षम है। 'चित्रलेखा' का रचना विधान सम्राट चन्द्रगुप्त के राज दरबार से प्रारम्भ होकर पन्द्रह उपन्यास सोपानों की यात्रा कर 'चाणक्य' शीर्षक उपन्यास की रचना में अपने अन्तिम गन्तव्य पर पहुँच जाता है। चित्रलेखा से चाणक्य तक वर्मा जी ने पन्द्रह उपन्यास लिखे हैं। चित्रलेखा पर दो बार फिल्में भी बनी, भूले बिसरे चित्र पर अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ और 'प्रश्न और मरीचिका' के उपरान्त 'पद्म - भूषण' के श्रेष्ठ सम्मान से विभूषित किए गए और राज्य सभा के सदस्य नामित होने का गौरव भी भगवती बाबू को प्राप्त हुआ।

वर्मा जी द्वारा निर्मित नारियाँ अनन्धि सौन्दर्य की स्वामिनी हैं। वे रुप गर्वितायें हैं और प्रेम की परिभाषा हैं। वे उत्कट प्रेम की जीवन्त प्रतिभाएँ है जो प्रेम की वेदीपर सर्वस्व न्यौछावर करने से भी नहीं चूकती। 'चित्रलेखा' अपने ही भाग्य का एक विद्रूप हैं। दाम्पत्य जीवन में प्रेम को ईश्वरीय रुप जान कर पति प्रेम के प्रति अगाध निष्ठा से उसने अपना अस्तित्व ही मिटा दिया था। पति की मृत्यु के उपरान्त उसने कृष्णादित्य से प्रेम किया। यह प्राकृतिक प्रेम था - अपने और अपने में प्रेमी के अस्तित्व को एकाकार करना था। पर इसमें तृप्ति नहीं थी, आत्म विस्मरण नहीं था। चित्रलेखा राजनर्तकी बनी और सामन्त बीजगुप्त की पत्नीवत् भोग्या बन कर एश्वर्य भोगती रही। उसकी पिपासा और इच्छा फिर भी तृप्त नहीं हुई। उसमें 'आत्म विस्मरण का अनुभव तो हुआ परन्तु आत्म-बलिदान का नहीं।' सम्राट चन्द्रगुप्त के राजदरबार में योगी कुमार गिरि के तेजोमय मुख- मण्डल की

प्रभा से चित्रलेखा, सामन्त बीजगुप्त के रहते हुए भी, उसकी ओर आकृष्ट हुई और उसके प्रति अगाध प्रेम के कारण वह 'बीजगुप्त को सुखी बनाने हेतु उसे अपने प्रेम से मुक्त करना चाहती थी।' योगी कुमार गिरि से दीक्षा लेने का एक बहाना मात्र था, उसने स्पष्टतः स्वीकार किया था" मैं तुम्हारे पास इसलिए आई हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करो।' इसी स्थान से प्रेम और वासना का द्वन्द्व होता है- क्योंकि इसमें न तो आत्म विस्मरण था और न ही आत्म वलिदान। चित्रलेखा योगी कुमार गिरि की कुटी में ही रहने लगी। योगी कुमार गिरि ने वासनान्ध होकर छद्म से, मिथ्या भाषण कर, चित्रलेखा को अपनी अंकशायिनी बनाना चाहा। योगी का योगीत्व भंग हुआ और चित्रलेखा का मान- भंग। योगी के प्रति गहन क्षोभ व्यक्त करती चित्रलेखा का कथन है-

> "वासना के कीड़े ! तुम प्रेम क्या जनो ? तुम अपने ही लिए जीवित
> हो, ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है। प्रेम वलिदान है, आत्म त्याग है,
> ममत्व का विस्मरण है। तुम्हारी तपस्या और तुम्हारा ज्ञान
> तुम्हारी साधना और तुम्हारी आराधना- यह सब भ्रम है,
> सत्य से कोसों दूर है। तुम अपनी तुष्टि के लिए गृहस्थ- आश्रम
> की बाधाओं से, कायरता पूर्वक सन्यासी का ढौंग लेकर विश्व
> को धोखा देते हुए मुख मोड़ सकते हो- तुम अपनी वासना को
> तुष्ट करने के लिए मुझे धोखा दे सकते हो- फिर भी तुम
> प्रेम की दुहाई देते हो ?'

अन्ततः चित्रलेखा अपने समस्त ऐश्वर्य का परित्याग कर उस निर्धन बीज गुप्त के साथ जो अपना धन एश्वर्य पद प्रतिष्ठा सभी कुछ श्वेतांक को सौंप चुका था- भिखारिणी बन कर निकल पड़ी।

प्रेम और वासना के इस द्वन्द्व को वर्मा जी के सभी उपन्यासों में देखा जा सकता है। १९६० में प्रकाशित 'वह फिर नहीं आई' उपन्यास में रानी श्यामला भी प्रेम और वासना के द्वन्द्व में प्रेम की सात्विकता सिद्ध कर सकी है। भारत विभाजन से उत्पन्न हुई स्थिति में रानीश्यामला अपने पति राजा जीवनराम के साथ भारत में शारणार्थी के रुप में आई। बीस हजार रुपये के गबन में पति को नौकरी से निकाला गया जिसे अदा करने के लिए उसने ज्ञानचन्द की चोरी की। पकड़े जाने पर अपनी पत्नी रानी श्यामला को ज्ञानचन्द को सौंप कर वह निकल गया। रानी श्यामला तन से ज्ञानचन्द की भोग्या

बनी रही पर आत्मा सदैव उसकी पति में ही रमी रही। पति की मृत्यु के बाद रानी श्यामला भी घर छोड़कर चली गई और जब लौटी तो उसके पास सम्पूर्ण एश्वर्य था; वह बीस हजार रुपये से भरी अटैची ज्ञानचन्द को सौंप कर चली गई और फिर नहीं आई।

'भूले बिसरे चित्र' १९५९ में प्रकाशित हुआ और इसमें भी प्रेम और वासना का द्वन्द्व एक ही परिवार की चार पीढ़ियों तक फैला हुआ है। मुंशी शिवलाल और सेठ प्रभुदयाल की पत्नी जैदेयी, पुत्र गंगा प्रसाद और मलका; पौत्र नवल किशोर और ऊषा ऐसे युग्म है जो अपनी सात्विक पत्नी के होते हुए परनारी की वासना में लिप्त हैं। परन्तु, यही वासनात्मक नारियां अपने चरित्र का परिष्कार करने में प्रयत्नशील हैं। जौहरी राधेलाल की पत्नी सतवन्त कुँअर शराब पी पीकर अपनी वासना-लीला में मग्न रहती है।

'रेखा' उपन्यास की नायिका रेखा अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से शारीरिक सम्बन्ध बनाकर दूसरी बार उससे सम्पर्क नहीं करती किन्तु, प्रभाशंकर शुक्ल जो वह भूल नहीं पाती क्योंकि उनसे उसका आत्मिक सम्बन्ध था।

'प्रश्न और मरीचिका' में ऐसे ही केसरबाई और गाबडिया सेठ का वासनात्मक सम्बन्ध है। वही केशरबाई प्रौढ़ावस्था में मु. शफी से व्याह रचाना चाहती है क्योंकि उन दोनों में प्रेम की सात्विकता है। एक दूसरे के प्रति आत्म वलिदान का भाव है।

भगवती चरण वर्मा की नारियाँ महत्वाकांक्षी है। प्रश्न और मरीचिका में मेजर अमर जीत की पत्नी कान्ता फिल्मों के आकर्षण में नायिका बनने के लिए शराब पीती है, भृष्ट ज्ञानचन्द के फरेब में पड़कर दो लाख रुपये अग्रिम लेती है और यहां तक कि अपना तन भी सौंपने के लिए तत्पर है। श्रीमती रुपा शर्मा, राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए सांसद, विधायक, मंत्री बनने के लिए अपने परिवार को दर किनार कर निसंकोच शराब पीने- पिलाने में, आलीशान कार भेंट लेने में या कि मेलाराम के साथ 'मेला रुश' (अर्थात 'मेलाराम और रुपाशर्मा का) होटल खोलने में संकोच नहीं करती।जैदेयी की महत्वाकांक्षा अपने धन मद की महत्ता है । वह अपनी हीरे की अनूठी गंगा प्रसाद को देती है और मरते समय भी बहुत कुछ देना चाहती है। क्योंकि वह उसके पिता मुंशी शिवलाल की प्रेयसी है। केशर बाई एक वेश्या के स्तर से उठकर अभिनेत्री और फिर मु. शफी से भले ही वह मुस्लमान हों' अपना धर्म छोड़कर विवाह करने की आंकाक्षा लिए हैं। श्रीमती मीरा उपाध्याय को उसके आई. सी. एस. पति ने केवल इसलिए घर से निकाल दिया कि वह नृत्य, गान और

इसी प्रकार की कलाओं में रुचि लेती थी। वह मारिया गियोवानी से मीरा बनी और फिर जीवन भर परित्यक्ता ही बनी रही।

भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो मे वे नारी पात्र विस्मृत नही किए जा सकते जो मूलरुप से ही सात्विक है। इन नारी पात्रों में परम्परा के प्रति आदर भाव है और परिवार में वे सम्मान पात्र भी है। चित्रलेखा की यशोधरा सामन्त मृत्युञ्जय सिंह की पुत्री है किन्तु शीलवान, शान्त और सामाजिक परम्परा के पालन में अनुरक्त। प्रेम में सात्विकता, महत्वाकांक्षा में उदारता और नारी सुलभ प्रेम की परिभाषा यशोधरा के चरित्र में विद्यमान हैं। 'प्रश्न और मरीचिका' की प्रमिला भी ईर्ष्यामुक्त विश्वसनीय पति- परायण और पति- नियंत्रक महिला है। इनके अतिरिक्त वे महिलायें जो पापाचार में लिप्त रही है और अंततः शालीन बनने का प्रयास कर सकी है तो वे भी स्मरणीय रहेंगी। उनमें चित्रलेखा, केशरबाई, जैदेयी कान्ता और रुपाशर्मा जैसे विदुषियां है।

वर्मा जी नारी- चरित्र के कुशल चित्रकार है। मानव जीवन में तो अच्छाई और बुराई समान रूप से विद्यमान है। उपन्यास कार तो मानव चरित्र का चित्रण करता है और भगवती बाबू के समस्त उपन्यासों में सामाजिकता में प्रेरणा प्रदान करने का केन्द्र नारी - पात्र है चाहे वातावरण राजनीति का हो या साम्प्रदायिकता का हो या सामाजिक संस्कृतिक का हो। गृहणी नारी- पात्रों को वर्मा जी ने स्पर्श भर किया है; यद्यपि लता जैसी पुत्री और विद्या जैसी वधू को भी विकास के पर्याप्त अवसर मिल सकते थे किन्तु, उनका सामाजिक प्रदेय शून्य के बराबर होता।

वर्मा जी के उपन्यास यथार्थ का चित्रण करते है- यथार्थ जो प्रत्यक्ष है। चित्रलेखा के प्रथम पृष्ठ पर लिखा था - "अनातोले फ्रांस की "थाया" में और 'चित्रलेखा' में वही अन्तर है जो अनातोले फ्रांस और मुझ में है।' इतना ही गस्ताव फलाविअर की 'मदान वावेर अनातोले फ्रंस की 'थाया' एमली जोला का नाना कीम की मदाम वावेरी' अनातेले फ्रंस ही "थाया' एमली जोला का 'नाना' भी उसी युग की देन है। थाया और चित्रलेखा दोनों ही एक ही विषय की व्याख्या है।

भगवती बाबू की ख्याति चित्रलेखा से ही इइ और आज भी उसी एक उपन्यास पर स्थित है। चित्रलेखा उनका ऐसा नारी पात्र हे जो आज भी जीवंत है, आज भी प्रासंगिक है।